

॥ ओ३म् ॥

जन ज्ञान

१४ मार्च १९७६

रविवार : २ चैत्र २०३२

हिन्दी साप्ताहिक



मूल्य ५० पैसे

आज वालों का नहीं काम
करने का समय है - इन्दिरा गांधी

नया साहित्य

१— धरती का स्वर्ग

लेखक—पं० शिवकुमार शास्त्री काव्य
व्याकरण तीर्थ, संसद् सदस्य ।



पं० शिवकुमार जी शास्त्री आर्यसमाज के पुराने महोप-
देशक रहे हैं। पिछले ३० वर्षों के अपने अनुभवों को
उन्होंने "धरती का स्वर्ग" नामक पुस्तक में प्रस्तुत किया
है।

गृहस्थाश्रम को कैसे स्वर्ग बनाया जाए ? इस विषय
में शास्त्री जी का मार्गदर्शन सभी के जीवन को नयी
प्रेरणा देने में समर्थ है।

पुस्तक का मूल्य लागत मात्र १)५० है।

२. उपदेश-मञ्जरी

महर्षि दयानन्द के उपदेशों का यह संग्रह प्रचार की
दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है। मूल्य २) ; किन्तु १००
मंगाने पर केवल १००) सैंकड़ा।

३. धर्म का सार

स्व० पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय लिखित यह पुस्तक प्रचार
के लिए अत्यन्त उपयोगी है। साधारण व्यक्तियों को समझने
के लिए इसे ६ कथाओं में प्रस्तुत किया गया है। मूल्य १)
किन्तु १०० मंगाने पर ६५) सैंकड़ा

४. महान् दयानन्द

महर्षि दयानन्द को विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रस्तुत
करते हुए पं० शिवदयालु जी ने इस अनमोल पुस्तक में
प्रस्तुत किया है।

मूल्य १)५०

१००) सैंकड़ा

५. आदर्श परिवार

राजस्थान के भूतपूर्व मंत्री श्री जुगलकिशोर जी
लिखित यह पुस्तक प्रचार व विवाह आदि पर बांटने के
लिए विशेष उपहार है।

मूल्य ६० पैसे।

४०) सैंकड़ा

६. प्रभु के चरणों में

प्रसिद्ध विद्वान पं० हरिशरण जी द्वारा सामवेद के
कुछ मंत्रों की सरल व्याख्या प्रार्थना रूप में प्रस्तुत की
गयी है। मंत्रों को पढ़ते हुए साधक भाव विभोर हो जाता
है।

मूल्य १.५०।

अधिक से अधिक मंगाएं : बांटे

दयानन्द चित्र दर्शन

[अब छप कर तैयार है]

७२ पृष्ठ : ५ रंगों में छपी

एक ऐसी पुस्तक : जैसी पिछले १०० वर्ष
में नहीं छपी : सर्वश्रेष्ठ कागज पर
सुनहरी बड़िया कपड़े की जिल्द और

मूल्य : केवल २० रुपए

किन्तु १५ अप्रैल १९७६ तक

का समय बढ़ा दिया है।

६००) की १०० २००) की २५

३५०) की ५० १००) की १०

और १५) की एक प्रति

शीघ्र से शीघ्र मंगा लें : स्टॉक थोड़ा है।

दयानन्द संस्थान

नई दिल्ली—११०००५



जन-ज्ञान

साप्ताहिक

सम्पादक

राकेश रानी

सह-सम्पादक

कु० आभा

दूरभाष : ५६६६३६

पता :

वेद मंदिर

१५६७, हरद्वारसिंह मार्ग

[निकट ३१-नाईवाला]

करोल बाग, नई दिल्ली-५

●
वार्षिक मूल्य २०)

विदेश में ४ पौंड : हवाई डाक से

२ पौंड : समुद्री डाक से

आजीवन ३०१

वर्ष १ : अंक ४-५

●
२ चंद्र : सम्वत् २०३२

दयानन्दाब्द : १५१

सृष्टि सम्वत् : १९६०-८५३०७६

होली का संदेश

होली फिर आयी है। हम उसे मनाएंगे, पर उस का संदेश हमारे मन तक नहीं पहुँच पाएगा। जीवन में रंग भरना बहुत कठिन बन गया प्रतीत हो रहा है।

होली यज्ञ का प्रतीक है। इस दिन हम मन की सारी कटुता और राग-द्वेषादि भुला कर एकता के सूत्र में आबद्ध हो जाते हैं और प्यार के गीतों पर आनन्द का संगीत वायुमंडल में गूँज जाता है।

भेद-भाव, ईर्ष्या-द्वेष, क्रोध-वैमनस्य सभी कुछ जला कर ही हम होली मना सकते हैं। जीवन की विविधता में एकता का मंत्र होली गुंजा रही है। मन को पवित्र करने का प्रेरक पाठ इस पर्व का अमर संदेश है।

आप, हम और वे सभी जो किसी भी रूप में इस पर्व को मनाते हैं इस दिन आत्म निरीक्षण करें और अपने तन को, मन को रंग में रंगते हुए अपने को भी सत्य के पावन रंग से रंगने का व्रत लें।

कूड़ा-करकट सभी समाप्त हो गए। अंधकार नष्ट हो, और पूर्णिमा का ज्ञान हमें नयी प्रभा-शक्ति-कांति-उल्लास प्रदान करे।

इस संकल्प के साथ होली मनाइए।

भारत के ग्रामों में अज्ञान छाया है। अंधविश्वासों की छाया से सभी ग्रस्त हैं। नकली भगवान, ढोंगी गुरु भोली जनता को ठग रहे हैं। इन सब को सन्मार्ग पर लाने का निश्चय ही वस्तुतः आनन्द का मार्ग है।

भांग, नशे, गालियाँ और गन्दगी होली के नाम पर कलंक हैं। कुरीतियों और अश्लीलता का होली से कोई संबंध नहीं। असभ्यता मनुष्य का धर्म नहीं, इसलिए उल्लास-हास के पर्व पर इन सब को तिलांजलि देनी ही चाहिए।

जीवन आनन्द की खोज में भटक रहा है। इसी की खोज वह भौतिक पदार्थों में करता है। कहीं भी लक्ष्य प्राप्त न होने पर वह अपने को भुलाने के लिए नशों का सहारा लेता है पर यह क्या उसे आनन्द दे सकेंगे ?

प्यार, एकता, स्नेह, और सौजन्य की राह पर चलते हुए दुर्गुणों को तिलांजलि दो ! भौतिक साधनों में आनन्द की खोज छोड़कर उसे अपने भीतर प्राप्त करने का प्रयत्न करो।

जला दो दुर्गुण, और कुन्दन बनो ! होली की अग्नि को यज्ञाग्नि समझ उस में जीवन का कलुष डाल दो। नया वर्ष १५ दिन बाद आरम्भ हो रहा है.....

उस दिन पवित्र बन कर नए जीवन का आरंभ करो।

—भारतेन्द्रनाथ

मंगल कामनाएं

मान्यवर पं० भारतेन्द्र जी, सादर नमस्ते ।

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपने 'जनज्ञान' को साप्ताहिक कर दिया है । जनज्ञान साप्ताहिक के लिए हमारी शुभकामनाएं आपके साथ हैं ।

भवदीय—

भरतसिंह, सभा-मन्त्री

प्रियवन्धु श्री भारतेन्द्रनाथ जी,

सादर नमस्ते ।

आपके भेजे हुए जनज्ञान (साप्ताहिक) के द्वितीय एवं तृतीय अंक देखे । अत्यन्त प्रसन्नता हुई । निश्चय ही यह उदात्त अध्यवसाय शताब्दि वर्ष की आर्य जगत् को बहु-मूल्य तथा उपयोगी भेंट है । दोनों अंक, वेश-भूषा, सान्ध्या-संचयन एवं सुरुचिपूर्णता में आपकी सम्पादन क्षमता की मुहूर्त साक्षी हैं । ऋषि दयानन्द के सन्देश को दिग्-दिगन्त में फैलाने का जो आपने शुचि-व्रत अपनाया है, उस दिशा में इस साप्ताहिक का स्थायी एवं प्रभावी योगदान होगा, ऐसा मेरा निश्चय है ।

भगवान् आपको और भी अधिक शक्ति, उत्साह एवं वैभव दें जिससे ऋषि-ऋण से जनता का उद्धार करने में आप अमोघ साधन बन सकें ।

स्वर्गीय स्वामी समर्पणानन्द जी का "प्रातः सूक्त" लेख वास्तव में ही वैदिक हृदय से निकाले हुए आध्यात्मिक भावनाओं से समृद्ध "शोध" साहित्य के अमर उद्गार हैं । आज हममें पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार सरीखे तितिक्षु, तपोनिष्ठ ब्रह्मण्य ब्राह्मणों का जो अभाव होता जा रहा है, इससे आर्यसमाज का भविष्य धूमिल-सा हो रहा प्रतीत हो रहा है । "आपकी तपस्या इस अभाव को असम्भव बना सके" यह मेरी विनीत अभ्यर्थना भगवान् के चरणों में है ।

आशा है, आप इस दुर्गम पथ पर बढ़ते जायेंगे—परम विदुषी पण्डिता राकेश रानी का सहयोग जो आपको मिल रहा है, उसका मूल्य भी आंका नहीं जा सकता । उनकी साधना भी अद्वितीय है ।

आदर सहित—

आपका आर्य बन्धु

परमानन्द (डा.)

(एम. ए. पी. एच. डी.)

बहिन राकेश रानी !

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि आपने 'जनज्ञान' साप्ताहिक भी निकालना प्रारम्भ कर दिया है ।

मैं अभी तक आपका 'जनज्ञान' मासिक तो पढ़ता ही था, अब मुझे साप्ताहिक भी पढ़ने को मिलने लगा है । इसके लिए मैं आपको धन्यवाद एवं बधाई देता हूँ और उस परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि आप इस कार्य में सदैव सफलता प्राप्त करें । आपका यह साप्ताहिक 'जनज्ञान' संसार में सितारों की तरह चमकता रहे यही मेरी शुभ कामना है ।

आप मुझे 'जनज्ञान' निःशुल्क भेजकर जो वृषा कर रही हैं, उसके लिए मैं आपका जीवन पर्यन्त आभारी रहूँगा ।

आपका

—गौतमप्रकाश गुप्ता,

आजीवन बन्दी

केन्द्रीय कारागार, नई दिल्ली-18

श्री भारतेन्द्रनाथ जी,

सादर सप्रेम नमस्ते ।

कल आपका साप्ताहिक 'जनज्ञान' मिलने से बहुत ही प्रसन्नता हुई, मैंने कल ही 20 रु० का मनिआर्डर आपके कार्यालय को भेज दिया है ।

आपका 'जनज्ञान' यदि इसी प्रकार आर्य जनता की सेवा करता रहा तो भविष्य में दैनिक हो जाएगा, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है ।

—७८०८, गंगाप्रसाद आर्य, उपदेशक

बल्हारपुर,

—जन-ज्ञान का साप्ताहिक अंक प्राप्त कर अत्यधिक प्रसन्नता हुई । इस अंक के प्रकाशित होने में जिन-जिनका सहयोग है वह सब बधाई के पात्र हैं । यह हमारी मंगल-कामना है कि पत्रिका सुचारु रूप से दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति करे । ईश्वर आपको सामर्थ्य दे कि आप अपने आदर्शों को मूर्त रूप दे सकें तथा वेद-मन्दिर में की गई साधना को पूर्ण कर सकें ।

जन-ज्ञान साप्ताहिक का प्रथम वर्ष का प्रथम अंक बड़ी साज-सज्जा, बड़े अरमान-प्यार-दुलार पुचकार के साथ तैयार निकला । आपकी कामना अवश्य सफल हो, यह मेरी हार्दिक शुभकामना है ।

मुख पृष्ठ पर स्वामी दयानन्द सरस्वती का शान्ति स्वरूप ध्यानस्थ मुखमण्डल प्रेरणादायक तथा अन्तिम पृष्ठ पर अदम्य साहस का प्रतीक, बढ़ता-उठता उच्च शिखर पर पहुँचने की तीव्र उत्कण्ठा से भरपूर कर्मवीर जवान का चित्र एक बार दिल को झकझोर देता है ।

अन्दर भी 'मेरा सपना', 'महिला जगत्' तथा 'विज्ञान जगत्' के अलावा और भी कई मौलिक बातें ज्ञान बर्तक पाई गईं । मेरा सुभाव है कि इसे ऐसा बनायें कि सबका प्यारा हो । इसे रंग-बिरंगे फूलों से भर दें ।

—अर्जुन प्रसाद, नाथनगर



वर्ष १

रविवार १४ मार्च,

१९७६ : २ चैत्र २०३२

अंक ४

रोली : चूड़ियाँ

अंधविश्वास, अज्ञान और पाखंड १८७५ से भी अधिक आज फैले हुए हैं। भोगवाद की लहर ने मनुष्य को पशु बना दिया है। नकली भगवान जन मानस को अंधकार में भटका रहे हैं। ५५ करोड़ का भारत देश आज भी सत्य-धर्म से दूर निराशा में भटक रहा है।

देव पुरुष युगान्तरकारी महर्षि दयानन्द के अनुयायी, पद, लीडरी और प्रदर्शन के व्यामोह में कर्तव्य भूल चुके हैं। युवाशक्ति राजनीति की छलना के मोहपाश में भटकी हुई है। आर्य युवक भाषण-लेखन और प्रदर्शन को इष्ट बनाकर बढ़ रहे हैं।

भारत की ५५ करोड़ जनता को काल की चक्की में पिसते देखकर हमारा मन कुछ करना चाहता है। पर प्राण देने वाले वीर आर्य वीर कहीं खोजने पर भी तो नहीं मिलते।

समझ नहीं आता कि किसे पुकारूं, किस का आह्वान करूं, प्राणों की आहुति देकर धर्म-ध्वजा फहराने के लिए किसे कहूँ। सब कुछ हो सकता है पर प्राण देने वाले, जीवित तिल-तिलकर जलने के लिए तैयार वीर कहाँ से आएँ।

नौकरी-घन और पद के भूखे युवकों से क्या आशा की जाए? भाषणों से क्रांति का स्वप्न दिखाने वालों पर कौन विश्वास करे? ग्राम-ग्राम और गली-गली में वेद की ज्योति पहुँचाने का व्रत लेकर बढ़ने वाले व्यक्ति कहाँ खोजूँ?

लाखों ईसाई युवक जीवन देकर ईसा का संदेश फैला रहे हैं। लाखों मौलवी मोन भाव से अपना काम कर रहे हैं। किन्तु राम-कृष्ण-वेद-शास्त्र मानने वाले व्यक्तियों के शरीर का रक्त इतना सफेद हो चुका है कि वे त्याग और बलिदान को भाषण-लेख का ही विषय मान चुके हैं।

हमारे एक हाथ में रौली है और एक में चूड़ियाँ। मन कह रहा है कि इन दोनों को लेकर आर्य वीरों से कहूँ कि—कौन है वह वीर सिंह जो अपने मस्तक पर रौली लगाकर धर्म का संदेश फैलाने के लिए जीवन की आहुति देगा?

अपने हाथों युवकों के मस्तक पर रौली लगा बलिपथ पर भेजने का सोभाग्य क्या कभी मिलेगा?

जो रौली लगाने के लिए तत्पर नहीं, उन्हें चूड़ियाँ भेंट करने के लिए भी मन सोचता है..... कायर या वीर दो में से एक तो आप हैं ही—समय को बदलना है अधर्म को मिटाना है, आगे बढ़ना है और मिटाना है—पाखंडों का गढ़..... क्या स्वीकार करेंगे आप

रोली या चूड़ियाँ !

आगे बढ़ने के लिये

इस बार वाराणसी यात्रा में एक विचार मन में आया है। उसे आपके सम्मुख रखता हूँ।

१. आरंभ में हरिद्वार, मथुरा, इलाहाबाद, वाराणसी, पुष्कर ५ स्थानों पर धर्म प्रचार केन्द्र खोले जाएँ।

२. प्रत्येक केन्द्र के लिए एक योग्य व्यक्ति पूर्ण समय देने वाला अध्याक्ष नियुक्त किया जाए।

३. प्रत्येक केन्द्र पर वहाँ की परिस्थितियों के अनुकूल प्रचार व्यवस्था की जाए।

४. आरम्भ में एक-एक केन्द्र को चलाने पर कम से कम १०००) मासिक व्यय आएगा। वर्ष भर में ५ केन्द्रों के लिए कम से कम ६०,०००) व्यय करना होगा।

यह योजना केवल ५ स्थानों के लिए ही नहीं है। भारतवर्ष में कम से कम १००० तीर्थ हैं उन सब पर हमें ऐसे प्रचार केन्द्र खोलने होंगे। सब में अलग-अलग ढंग से प्रचार का प्रबंध करना होगा।

देश के ५० करोड़ नागरिकों के विचारों को बदलना है तो इस मार्ग को अपनाने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं। धर्म क्या है और क्या नहीं है यह जब तक जनता को नहीं बताया जाएगा तब वह सत्य और असत्य में अन्तर कैसे करेगी?

भाषण, प्रस्ताव से ऊपर उठकर जिन्हें कुछ करने की इच्छा है उन्हें हमारा निमंत्रण है कि वे इस योजना की पूर्ति में हमारा हाथ बंटाएं। दानी महानुभाव और आपसमाजें इस दिशा में सोचें।

एक-एक केन्द्र के लिए आधे घन का प्रबंध एक-एक वर्ष के लिए होने पर यह योजना आरंभ कर दी जाएगी।

अहिंसा दयानन्द के दिव्य स्वप्न पूर्ण करने के लिए कुछ कीजिए यही हमारी प्रार्थना है।

—राकेशरानी

—भारतेन्द्रनाथ



—भारतेन्द्रनाथ

प्रदर्शन हो चुके
आओ अब काम करें !

आर्यसमाज शताब्दी के उपलक्ष्य में अलवर में प्रथम महोत्सव हुआ। फिर मारीशस-दिल्ली में सम्मेलन हुए। मेरठ-कानपुर-वाराणसी में उत्तर प्रदेशीय आर्यप्रतिनिधि सभा ने सम्मेलन किए। लुधियाना में पंजाब सभा ने, मध्यप्रदेश में वहाँ की सभा ने सम्मेलन किए। अभी रोहतक में स्वामी इन्द्रवेश जी व स्वामी अग्निवेश जी ने एक बड़ा सम्मेलन शिवरात्रि पर किया तथा एक ओर विशाल सम्मेलन रोहतक में ही स्वामी भोमानन्द जी सरस्वती व स्वामी रामेश्वरानन्द जी आदि हरयाणा आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से २७-२८-२९ मई में करने जा रहे हैं।

सम्मेलनों का यह दौर मई १९७६ में समाप्त हो जाएगा। इन सभी सम्मेलनों में प्रदर्शन हुआ, खूब हुआ। पर इस से आगे मंजिल अभी और भी है ! देश की घमं प्राण जनता का सही नेतृत्व करने के लिए आर्यसमाज के शीर्षस्थ नेताओं को गम्भीरता पूर्वक सोचना होगा। हमारे सामने ५५ करोड़ व्यक्तियों के भ्रांत विचार हैं। अधर्म और पाखंड की चुनौती तो मिल रही है। क्या उसे स्वीकार करने का साहस हम में है ?

हमारा अनुरोध है कि भाषण, प्रदर्शन और प्रस्ताव योजनाओं से ऊपर उठकर अब आओ, कुछ काम करें। राग—द्वेष, ईर्ष्या, वैर-विरोध समाप्त कर एक होकर यदि सारे आर्यनेता दयानन्द के दिव्य स्वर को गुंजाने का व्रत लें तो वह दिन दूर नहीं जब सारी घरती ऋषि का जय-जयकार करेगी।

राजनीति में जिन्हें जाना हो जाए पर वे आर्यसमाज का नेतृत्व छोड़ दें। ब्राह्मण का पद जिन्हें चाहिए, जो त्याग—बलिदान के पथ पर चल सकें, वे आर्यसमाज का नेतृत्व करें। एक व्यक्ति दो काम ईमानदारी से नहीं कर सकता। आर्यसमाज के शीर्षस्थ नेता केवल आर्यसमाज का ही काम करें। यह आज की पहली आवश्यकता है।

सभी मिल कर रचनात्मक कार्यक्रम बनाएं। धन जमा करने की प्रवृत्ति छोड़कर प्रचार के लिए काम करने की

नीति निश्चित हो। किसी को भी मतभेदों के कारण दुत्कारा न जाए। प्रबंध सम्बन्धी विवादों को निपटाने के लिए एक उच्चस्तरीय समिति बने !

आज देश को आर्यसमाज के तपोधन स्वरूप की आवश्यकता है। ग्राम-ग्राम और गली-गली में ऋषि दयानन्द के दीवाने एक बार फिर वेद की ध्वजा लेकर बढ़ें तो सफलता हमारे चरण चूमेगी।

हमारा तो एक ही सपना है कि जैसे भी हो सारा देश फिर से राम-कृष्ण के आदर्शों को जीवन में ढाले। हम प्रभु के दर्शन करें, पवित्र बनें और सत्य को आदर्श मान कर घर-घर—को स्वर्ग बनाएं !

कुछ करना होगा या मरना होगा। वर्तमान ढंग पर चलते हुए सत्य की रक्षा हम न कर सकेंगे। दयानन्द के प्रति जिन्हें श्रद्धा हो उन से हमारा आग्रह है कि वे समय के साथ स्वयं को बदलें और देश को बदलने के लिए बड़े से बड़ा बलिदान देने को तैयार रहें।

जन्म दिवस पर :

आत्म निरीक्षण !

१४ मार्च १९७६ को अपने जीवन के ४७ वर्ष पूर्ण कर मैं ४८ वें वर्ष में प्रवेश कर रहा हूँ। संघर्ष और कार्य के चक्कर में एक वर्ष कितना शीघ्र बीत जाता है पता भी नहीं चलता !

एक-एक दिन जीवन की अवधि में कटौती कर रहा है। मृत्यु की मंजिल समीप आती जाती है और हम एक ओर जन्मदिन मना कर प्रसन्न हो लेते हैं।

पता नहीं किस घड़ी जन्म हुआ था कि.....जीवन एक समस्या बन गया है। एक ओर सफलता इतनी मिली है कि भाग्य पर गर्व होता है। दूसरी ओर एक विडम्बना यह रही है कि जिन के लिए दिन-रात संघर्ष कर रहा हूँ उन्होंने कभी प्यार नहीं दिया।

कभी एकांत के क्षणों में सोचता हूँ कि क्या मिल रहा है इस जीवन में ! गालियाँ, अपमान, दुत्कार और फटकार अपनों की। कभी स्वप्न में भी किसी का अहित नहीं सोचा ! कभी बड़े से बड़े प्रलोभन में भी पथ से नहीं भटका, फिर भी क्यों सब कुछ उलटा ही समझा गया।

प्रश्न का उत्तर मन दे देता है और गालियों की बौछार में भी आशा के गीत मन से निर्भर की तरह फूट पड़ते हैं।

साधन हैं नहीं और काम हो जाते हैं। जो सोचता हूँ पूरा हो जाता है। परमात्मा का आशीर्वाद सदा सिर पर अनुभव करता हूँ। लगता है कि वह स्वयं मेरे सारे मनोवांछित कार्य पूर्ण कर देता है।

१४ मार्च १९७५ से १४ मार्च १९७६ का वर्ष मेरे जीवन का सब से उल्लेखनीय वर्ष बन गया है। इस वर्ष

जन-ज्ञान साप्ताहिक, १४ मार्च, १९७६

२५ मई को बड़ी कन्या ज्योत्स्ना का विवाह हुआ। सौभाग्य से वर ऐसा मिला जैसी कल्पना वर्षों से की थी। पर पता नहीं प्रभु ने क्यों परीक्षा लेने की सोची। और विवाह के कुछ मास बाद ही प्रिय धर्मवीर जी कष्ट साध्य रोग से पीड़ित हुए। उनकी चिकित्सा चल रही है। प्रभु कृपा ही करेंगे पर इस सारे कांड ने जो चोट पहुंचायी उस की कल्पना भी भुक्त भोगी ही कर सकते हैं।

१० अगस्त को मुझ पर लकवे का आक्रमण हुआ पर कार्य के बोझ ने एक पल भी विश्राम न करने दिया। प्रभु कृपा हुयी और गाड़ी चलती रही—चल रही है।

शताब्दी वर्ष आगे बढ़ने के लिए निमंत्रण दे रहा था और परिस्थितियां कुछ न करने की सलाह दे रही थीं। फिर भी मन प्रबल हुआ और १५ फरवरी १९७६ से जन-ज्ञान का साप्ताहिक संस्करण भी आरम्भ कर दिया।

जिस काम के लिए लाखों रु० चाहिए थे वह काम आज की दृष्टि से बिना पूंजी के आरम्भ करना सब से बड़ी मूर्खता थी। पर जो करना था कर दिया और परिणाम सौंप दिया प्रभु के हाथ में।

इस वर्ष चारों वेदों का प्रकाशन भी पूर्ण हुआ। एक संकल्प अधूरा नहीं रहा।

जो कुछ भी हमारा काम है एक खुली पुस्तक की तरह सब के सामने है। आंधी-तूफान और भंभा में मजबूती से बढ़ते रहने की इच्छा और परमात्मा का आशीर्वाद ही हमारी पूंजी है।

और आज भी इस विशाल घरती पर एकाकी चलते हुए जो कुछ सम्भव है कर रहे हैं। जो कुछ भी हो रहा है उस का आधार है—

१—परमात्मा का आशीर्वाद।

२—जनता का प्यार।

३—और एक मात्र सहयोगिनी श्रीमती राकेश रानी की कार्य क्षमता।

दुःख में, सुख में, संकट में, विपदा में इस महिला ने जो साथ दिया उसका वर्णन लेखनी करने में असमर्थ हैं। निरंतर रुग्ण रहते हुए भी १८-१८ घंटे कुर्सी पर बैठकर मूक साधना करने वाले इस व्यक्तित्व का मूल्यांकन इतिहास करे या ना करे लेकिन यह सत्य है कि यदि ऐसे १० व्यक्तित्व भी सारे देश में मिल जाते तो देव दयानन्द के दिव्य स्वप्न पूर्ण होने में देर न लगती।

मुझे केवल एक ही पीड़ा है कि जो विशाल कार्य फैला दिया है, इसे कौन संभालेगा?

अपनी संतानों में से भी किसी को बलिदान देने के लिए तैयार नहीं कर सका। मेरे जीवन में सब से प्रसन्नता की बात यह होती कि यदि सारे योग्य बनकर दया-

नन्द के चरणों में जीवन अर्पित कर देते। पर समय का प्रभाव अधिक शक्तिशाली है।

और आज मेरी आंखें उस व्यक्ति की खोज में भटक रही हैं जो आए और कहे कि मेरा सिर उपस्थित है, इसे काटकर दयानन्द के कार्य हेतु चढ़ा दो, मैं तैयार हूं।

पता नहीं जीवन में कोई ऐसा व्यक्ति आयेगा या नहीं पर यदि मिल जाएगा तो मैं समझूंगा कि मेरी साधना पूर्ण हुयी, न मिला तो जैसी प्रभु इच्छा।

बढ़ते जाना ही जीवन है। इसलिए बढ़ना तो होगा ही, साथ देने के लिए कोई आए या न आए..... अब चिन्ता छोड़ रहा हूं।

जो कुछ किया है या कर रहा हूं किसी पर भी एह-सान नहीं है। यह मेरे जीवन का नशा है। यह मेरे रक्त की प्रत्येक बूंद में है। आर्यसमाज के मंतव्यों का प्रचार और प्रसार करते हुए ही जीवन समाप्त हो जाए, यह मेरी एकमात्र इच्छा है।

दोष मुझ में भी हैं। मैं भी एक साधारण व्यक्ति हूं। फिर भी अपने दोषों को देख कर उन्हें दूर करने के लिए सदा यत्नशील रहता हूं। यत्न होता है कि मन निर्मल रहे। द्वेष-वैर-पद-मोह से दूर रहकर गुरुदेव दयानन्द के साधारण शिष्य की तरह यत्न करता रहूं कि मार्ग से भटकूं नहीं।

जनता का प्यार मिलता रहे,

प्रभु का वरद हस्त बना रहे,

पथ कभी भूलूं नहीं

माया में उलझूं नहीं

इसी प्रार्थना के साथ सभी का आशीर्वाद चाहता हूं। मेरी त्रुटियां बताते रहिए। कार्य जो अच्छे लगें उन्हें बढ़ाते रहिए और.....

प्रभु! बस इतना ही मांगता हूं।

कि अपने से कभी दूर न करना।

धर्म प्रचार केन्द्र खोलिए।

आर्य प्रतिनिधि सभाओं व आर्यसमाजों से प्रार्थना है कि वे अपने-अपने क्षेत्र में धर्म प्रचार केन्द्र खोलने का निश्चय करें। जो सभाएं या समाजें हमारे साथ सहयोग कर ऐसे केन्द्र खोलना चाहें वे सूचित करें।

आरम्भ में (१०००) मासिक व्यय होगा। जिसका आधा व्यय संस्थान देने का यत्न करेगा। आप संकल्प कर कार्यारम्भ का निश्चय कीजिए। यह केन्द्र केवल महत्वपूर्ण तीर्थ स्थानों पर ही खोलने का निश्चय करें—

—भारतेन्द्रनाथ

१४ मार्च जिनका जन्म दिवस है

एक अद्भुत

—बनारसी सिंह

व्यक्तित्व



दिल्ली भारत का दिल है। यों तो यहां एक से एक-आला हस्ती है। नामों की यदि सूची बनाने लग जाएं तो ऐसी विशाल बन जाएगी कि उसका ओर होगा न छोर। इस महानगरी की गतिविधियों की परिधि भी अकूती है। भला कौन सी है संस्था कि जिसका यहां नाम धाम न हो। भाग्य चक्र की चक्री जब चलती है तो व्यक्ति कहीं से कहीं निकल जाता है। मैं भी लगभग १७ वर्ष पूर्व गुरु द्रोण की नगरी से पांडवों के इस इन्द्रप्रस्थ में चला आया। यहां अनेकों मिले हैं एक से एक दिग्गज, बड़े-बड़े महारथी। उन सबको जाना है और नहीं जान पाया तो उन्हें जानने का प्रयास तो अवश्य ही किया। कितना जान पाया हूं यह बात अलग है। पर ऐसे बहुत थोड़े हैं कि जिनसे मैंने अपने आपको अजाने ही जुड़ा पाया है। उन्हीं में से एक के बारे में चला रहा हूं आज अपनी लेखनी।

जब मैंने उनके सम्बन्ध में लिखने को सोचा तो मैं कुछ उलझन सी में फंस गया। वैसे तो लिखना ही अब धंधा बन गया है। अनेकों महापुरुषों के बारे में लिखा होगा अब तक! किन्तु जब उनके सम्बन्ध में लिखने बैठा तो कई बार कुछ पंक्तियां लिखीं और फिर फाड़ दीं। क्योंकि बार-बार ऐसा लगा कि जिसके संबंध में लिखने बैठा हूं वह व्यक्ति है तो सरल पर उसका व्यक्तित्व उतना ही जटिल है। मुझे जो अनेक जीवन की राहों पर मिले हैं उनमें से ऐसे कुछ ही हैं कि जिनको बहुत निकट से देखने का सौभाग्य पाया है। उन्हीं में से हैं भइया पं० भारतेन्द्र नाथ भी।

१४ मार्च भारतेन्द्र जी का जन्म दिवस है। और इस बार उनकी उम्र में ४७ वीं गांठ लग रही है। उम्र पर ४७ गांठें लग जाना, संघर्ष की अपने आप में एक निराली कहानी है। वे जन्मे पूर्वी उत्तर प्रदेश में और व्याहृत गए पश्चिमी उत्तर प्रदेश (गाजियाबाद) में किन्तु दिल्ली के निवासी बन कर भी नहीं बन पाए। क्योंकि गंगा की धाराओं से उन्हें मोह है तो यमुना की नील लहरों भी इस गंगा-यमुनी व्यक्तित्व को सुहाती हैं। इसलिए उन्होंने अपना डेरा ठीक बाँडेर पर डाला है। नीमोल्लंघन भी व्यक्तित्व की एक अनोखी कसौटी होती है। वे रोज सीमा लांघते हैं किन्तु फिर-फिर कर अपने नीड़ का दामन पकड़ लेते हैं। क्योंकि वे सीमाओं का उल्लंघन तो करते हैं किन्तु

मर्यादाओं के दायरे को कभी नहीं तोड़ते।

पहली बार अब से लगभग १४ वर्ष पूर्व उनको मिला था तो प्रथम भेंट में ही कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि यह व्यक्ति अनोखा है। प्रथम मिलन से ही औपचारिकताओं से सर्वथा मुक्त आत्मीयतापूर्ण व्यवहार! कुछ ऐसा किया कि वह प्रभाव अमिट प्रभाव बन गया। फिर यदा-कदा मिलने का सिलसिला तो चलता रहा किन्तु मैं उसे मानसिक लगाव की तो संज्ञा दे सकता था, व्यावहारिक प्रगाढ़ता की नहीं।

प्रथम बार परिचय के लगभग १॥ वर्ष उपरांत अचानक ही मैं गंभीर रूप से बीमार पड़ा। कई दिन तक मेरा छोटा सा आवास ही (किराए का) मेरी दुनिया बन कर रह गया। अनेक लोग आए—औपचारिक तौर पर स्वास्थ्य की पूछताछ भी की और चले गए। यह सिल-सिला रोज ही चलता था। किन्तु एक दिन सांध्य बेला, वह अकेले नहीं दुकेले पधारें (क्योंकि साथ में प्रारदरणीया भाभी भी थीं) और फिर उन्होंने अपने सशक्त हाथों से मुझ अशक्त को सहारा दिया। स्वास्थ्य की पूछताछ करने के उपरांत बोले 'अरे भाई क्यों चारपाई पकड़ रखी है। उठ कर बैठा करो। दो दिन में ठीक हो जाओगे।' भाभी भी अपनी मधुरवाणी में बोल उठीं 'स्वस्थ हो रहे हो—ऐसा समझ कर साहम रखो।' मेरी पत्नी ने चाय बनाई और साथ ही भोजन के लिए भी पूछा तो भइया बोल उठे "अब जब दो दिन बाद यह स्वस्थ हो जाएंगे तो फिर किसी दिन जमकर भोजन करेंगे।"

वह लगभग २० मिनट ही ठहरे होंगे और फिर चल पड़े। उनके वे सान्त्वनापूर्ण स्वर आज भी मेरे मानसपटल पर अंकित हैं। वे चले गए और मैं आज उन शब्दों को उनका शुभाशीर्वाद ही मानता हूं। क्योंकि इसे मैं चमत्कार ही मानता हूं कि जिस रोगी को डाक्टर कम से कम दो सप्ताह के विश्राम की सलाह दे रहे थे, वह ठीक दो ही दिन बाद इस स्थिति में आ गया कि उठ कर चलने फिरने लगा। मैं पूर्ण स्वस्थ हुआ तो चौथे या पांचवें दिन उनसे भेंट करने पहुंचा। देखते ही बोले 'अरे बाह! तुम तो पूरी तरह ठीक-ठाक हो?'

इस घटना ने मुझे उनके साथ और जोड़ दिया। पहले दिन की भेंट में जो आत्मीयता का भाव उनके प्रति मन से उभरा था उसका स्थान अब आदर ने ले लिया!

बस फिर संपर्क में प्रगाढ़ता आती चली गई और औपचारिकता के आवरण धीरे-धीरे हटते गए और बढ़ती गई पारिवारिक आत्मीयता। और वह भी ऐसी कि अब मेरे परिवार में किसी को सामान्य से ज्वर की भी उन्हें खबर हो जाती है तो वे बिना सूचित किए मेरी कुटिया पर पधार जाते हैं।

जन-ज्ञान साप्ताहिक १४ मार्च १९७६

इतने वर्षों की इस लम्बी अवधि में उनका मुँह वैसा ही प्रेम मिला है, जैसा कोई अपने अनुज के प्रति दर्शाता है। इस अवधि में अनेक बार ऐसा भी हुआ है कि जब किन्हीं विषयों पर चर्चा के दौरान मत वैभिन्य की स्थिति आ जाती है तो मैं अपने स्वभाव की दुर्बलतावश उग्र हो उठा हूँ तो वे भी क्रोध में उबल पड़ते हैं ! और मुझे तब लगता है कि अब न जाने क्या होगा। किन्तु अगले ही क्षण उनका क्रोध कपूर बन कर उड़ जाता है और फिर उनके प्रेम की रस माधुरी से मैं स्वयं को सरोवार पाता हूँ।

कुछ समय तक तो मेरे मन में यह उलझन-उलझन ही बनी रही कि इतनी उग्रता और फिर कुछ ही क्षण के उपरांत शांति और स्नेहपूर्ण मुद्रा—उनके स्वभाव में यह अद्भुत समावेश कैसा है ? किन्तु एक दिन यों ही बातों क्रम में आदरणीया भाभी (पं० राकेशरानी) के शब्दों से मेरी यह मानसिक गुत्थी सुलभ गई। क्योंकि उन्होंने मुझे बताया कि भारतेन्द्र जी के पूज्य पिता थे पं० गयाप्रसाद शुक्ल। वही सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी श्री शुक्ल जिन्हें ब्रिटिश सरकार ने उसी रात को बन्दी बना लिया था, जिस दिन उन्होंने जाति-पाँति के बन्धन तोड़ कर अपने दाम्पत्य जीवन का श्रीगणेश किया था। भारतेन्द्र जी के पिता थे, जन्मना ब्राह्मण तो माता विद्यावती शारदा थी क्षत्राणी।

और उस दिन मैं समझ पाया कि भइया के जीवन में ब्रह्मतेज और क्षात्रतेज का समन्वय उन्हें उनके स्वनाम धान्य पिता एवं माता जी की परम्परागत देन है। इसीलिए वे अभी-अभी क्रोध के अवतार लगते हैं तो अगले ही क्षण शांति के सागर।

वस्तुतः उनका सारा जीवन ही संघर्ष की एक रोमांचक कहानी है। १४ मार्च, १९२६ को जन्मे इस कर्मठ सेनानी ने बाल्यकाल से ही आपदाग्रों व संघर्षों को झेला है। जब वह केवल ४ वर्ष के ही थे तो क्रांतिकारी पिता का वरद हस्त उनके सिर से उठ गया और विदुषी एवं सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में सक्रिय माता ने उन्हें गुरुकुल भेलम में प्रविष्ट करा दिया। वहाँ उन्होंने प्रमुख आर्य विद्वानों के श्री चरणों में बैठकर शिक्षा-दीक्षा पाई तथा उन्हीं के दिशा निर्देशन में उनमें वैदिक धर्म के उन उदात्त सिद्धांतों के प्रति निष्ठा जागृत हुई जो उन्हें ममताप्यी व महिमामयी माता ने जन्मघट्टी से पिलाये थे।

माता विद्यावती की प्रखर राष्ट्रनिष्ठा का परिचय भी इसी एक घटना से मिल जाता है कि जब १९४२ के संघर्षों के दिनों में वह एक दिन बम्बई से लौटी तो उन्होंने अपने झकलौते पुत्र को देखकर प्यार से अंक में नहीं भरा अपितु नितांत गम्भीर मुद्रा में कहा 'तू अभी

तक जीवित क्यों है, क्यों नहीं कुछ करता या मरता ?

और ये शब्द ही मुझे लगता है कि भारतेन्द्र जी के आज तक के जीवन के दिशा निर्देशक हैं।

१९४६ में गुरुकुल के समावर्तन संस्कार में सहस्रों लोगों के मध्य सिद्धान्तव्रती शारदा जी ने अपने सुपुत्र को उपदेश दिया "बेटे जीवन में कोई कार्य धनोपार्जन की दृष्टि से न करना और अपना समग्र जीवन देश और धर्म को ही समर्पित करना।"

यह दूसरा दिशा निर्देशक मंत्र था जिसे उन्होंने अपनी महिमामयी मातेश्वरी से ग्रहण किया। अभी वह १७ वर्ष के ही थे कि माता जी भी उनसे चिर विदाई ले गयीं। ऐसा लगता है कि माता जी के उपरोक्त वाक्य ही आज उन्हें दिशा-ज्ञान कर रहे हैं।

सन् १९५० ई० ! भारतेन्द्र जी के जीवन को एक नया मोड़ मिल गया जब वह पारिवारिक जीवन में प्रविष्ट हुए। उनकी सहधर्मिणी बनी पं० राकेश रानी। उनका जीवन क्रम और पारिवारिक जीवन वृत्त इस तथ्य की साक्षी प्रस्तुत करता है कि उन्हें एक ऐसा जीवन साथी मिला है कि जो कंटीले झाड़ों की बाड़ से लेकर सुख-सरिता तक समान रूप से उनका चिरसंगी है। संघर्षों की घड़ियों में भाभी ने कभी उफ तक न की अपितु जब भी कभी भारतेन्द्र जी थोड़े बहुत निराश भी हुए तो भाभी के मधुर हास्य ने उनकी निराशा को तुरंत छिन्न-भिन्न कर दिया है।

विवाह के उपरान्त भारतेन्द्र जी को २५० रुपये मासिक पर एक अच्छे प्रतिष्ठान का नियुक्ति पत्र मिला तो उन्होंने देव दयानन्द की युग परिवर्तनकारी विचारधारा के प्रसार प्रचार को ही जीवन का लक्ष्य मानते हुए उसे ठुकराकर ६० रुपये मासिक पर आर्य प्रतिनिधि सभा का उपदेशक बनने को ही वरीयता दी।

वस्तुतः १९५२ से १९७४ तक का तो उनका जीवन अनेक संघर्षों और विरोध-अवरोधों की एक संघर्ष पूरित गाथा है। अनवरत संघर्षों के इस कालखण्ड में ऐसे भी अनेक अवसर आए हैं जिनमें सामान्य व्यक्ति जीवन से सर्वथा निराश और हताश हो उठता है। यह भी कहा जा सकता है कि अपने अब तक के २६ वर्ष के गृहस्थ जीवन में भी श्री भारतेन्द्र जी ने केवल अपने परिवार के लिए ही कोई कार्य नहीं किया। उनके प्रत्येक कार्य में आर्य समाज की सेवा की भावना ही प्रवल और प्रखर रही है।

उन्होंने जो कुछ भी सोचा उसे पूर्णतः निश्चिन्त हाँकर किया। क्योंकि उनका विश्वास योजना और घोषणा में नहीं अपितु कर्म पर है। 'आर्यमित्र' को अधिकारियों की वर्जना के बावजूद एक वर्ष तक दैनिक के रूप में

प्रवाहित कर उन्होंने अपने चमत्कारी व्यक्तित्व का प्रदर्शन किया तो २ वर्ष तक 'आर्यमित्र' साप्ताहिक भी उनके सम्पादन में चमका दमका ।

तदुपरांत काम नहीं भ्रपितु दाम और नाम को ही सर्वस्व मानने वालों से न निभी तो वे आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के मुखपत्र 'आर्योदय' से जुड़ गए । लगातार चार वर्ष तक अपनी लेखनी और कुशल सम्पादन कला से उन्होंने उसे जो निखार प्रदान किया इस पत्रिका की पुरानी फाइलें आज भी उसकी गवाही देती हैं । किन्तु सभा संस्थाओं में धर्म से घड़ा प्यारा और देश से बड़ा दल के वायुमंडल में महसूस हुई घुटन ने उनके 'जीवन को एक नया मोड़ दे दिया । उन्होंने आर्य समाज और महर्षि दयानन्द के सिद्धान्त का प्रचार और प्रसार ही अपने जीवन की टेक बनाई है ।

आर्य समाज के प्रादेशिक से लेकर सावंदेशिक संगठन २० वर्ष से अधिक के कालखण्ड ने उन्हें जो अनुभव प्रदान किए उनके कारण ही उन्होंने दलबंदी व गुटबंदी से संवधा मुक्त होकर ठोस कार्य को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया और तदुपरांत 'जनज्ञान' मासिक को १९६८ के मई मास में आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध संन्यासी महात्मा आनंद स्वामी द्वारा प्रदत्त १०० रुपये की पूंजी से आरम्भ किया । उनके तथा भाभी के कठोर श्रम एवम् साधना से आर्य जगत् में 'जनज्ञान' का अपना स्थान बना और फिर १९७१ में हुई दयानन्द संस्थान की स्थापना ।

दयानन्द संस्थान का आज आर्य साहित्य प्रकाशक प्रतिष्ठानों में सर्वोच्च स्थान है । चारों वेदों के भाष्य को प्रत्येक हिन्दू (वैदिक धर्मों) परिवार में पहुँचाने का उनका संकल्प, उनकी तथा उनके परिवार की कठोर साधना के बल पर पूर्णतः न सही किसी सीमा तक तो अवश्य ही साकार हो रहा है । इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए कोई भी उन्हें प्रातः ६ बजे से रात्रि ६ बजे तक अपने कार्यालय में एक अखंड साधक के समान साधनारत देख सकता है । इतना ही नहीं कई बार तो वह देव दयानन्द के सिद्धान्तों की विवेचना के अनुसार साहित्य सृजन में सारी-सारी रात बिता देते हैं ।

उनकी इस कर्मठता के कारण जब वह अपनी भूख, प्यास के सम्बन्ध में भी उपेक्षा का भाव बरतते हैं तो बेचारी बेटियाँ परेशान हो उठती हैं साथ ही भाभी भी । किन्तु जब कभी कोई उनसे स्वास्थ्य के सम्बन्ध में सतर्कता बरतने को कहता है तो उनका एक ही उत्तर होता है । "काम करने के ही लिए तो प्रभु ने जीवन दिया है—मैं उसी की इच्छा-नुसार कार्यरत हूँ । वही मेरे स्वास्थ्य की भी चिन्ता करेगा ।"

आज दयानन्द संस्थान का कार्य विस्तार भारतेन्दु जी

व भाभी (राकेशरानी) जी की कठोर साधना का जीवित जाग्रत स्वरूप है । इस संस्थान द्वारा इस अल्पावधि में ही चारों वेदों के हिन्दी भाष्य से लेकर अनेक प्रमुख आर्य विद्वानों की रचनाओं और सैकड़ों ग्रन्थों का प्रकाशन और वह भी साधनों के अभाव में स्वयं में एक चमत्कार है ।

उनके सुदृढ़ नेतृत्व में संस्थान निरन्तर प्रगति पथ पर आरुढ़ है । कर्मठता, ध्येयवाद एवं अपनी सैद्धान्तिक आस्थाओं के लिए सतत संघर्षशील इस कर्मठ सेनानी के प्रति उसके निकट सम्पर्क में आने वाला कोई भी व्यक्ति आदर से नमन किए बिना नहीं रह सकता ।

वेद भाष्य की

आवश्यक सूचना

१५ मार्च से वेद भाष्य के चतुर्थ खंड का वितरण आरम्भ हो गया है । केवल शनिवार को ही करील वाग कार्यालय में ६ से ५ तक मिलेगा । सूर्यनगर कार्यालय में सोम-मंगल-बुध-वृहस्पति व शुक्रवार को मिलेगा । रविवार पूर्ण अवकाश रहेगा ।
—मंत्री

फार्म ४ (नियम ८ देखिये)

- | | |
|--|--------------------------------------|
| १. प्रकाशन स्थान | दिल्ली |
| २. प्रकाशन अवधि | साप्ताहिक |
| ३. मुद्रक प्रकाशक-संपादक का नाम | पंडिता राकेशरानी |
| ४. (क्या भारत का नागरिक है) | हाँ |
| ५. (यदि विदेशी है तो मूल देश) पता | १५६७, हरद्वारनसिंह मार्ग नई दिल्ली-५ |
| ६. उन व्यक्ति के नाम व पते जो समाचार-पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों । | दयानन्द संस्थान (पंजीकृत न्यास) |

मैं, राकेशरानी एतद् द्वारा घोषित करती हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं ।

प्रकाशक के हस्ताक्षर
राकेशरानी

तारीख २६-२-७६

जन-ज्ञान साप्ताहिक, १४ मार्च १९७६

दार्शनिक की दृष्टि से

वेद ईश्वरीय ज्ञान

—आचार्य उदयवीर शास्त्री

भारतीय संस्कृति के मूल आधार 'वेद' माने जाते हैं, पर आज वेदों की अपनी स्थिति क्या है ? इस विषय में विभिन्न विचार सुने जा रहे हैं। इसका कारण है, धर्म-तत्त्व के विषय में विभिन्न विचारों का समय-समय पर उद्भावन। मूलरूप में मानव मात्र के लिये धर्मज्ञान का उद्बोधक केवल 'वेद' प्रादुर्भाव में आया, यह ज्ञान-पुञ्ज मानव के प्रथम प्रकाश के साथ हुआ। स्वाभाविक था, कि मानवमात्र के मार्ग दर्शन की क्षमता को लेकर यह प्रकट हो। वेद प्रदर्शित मार्ग मानवमात्र के लिए जीवन पद्धति का उद्बोधक है। तब आज यह समझे जाने का क्या कारण है, कि 'वेद' भारतीय संस्कृति का मूल आधार है ?

अत्यधिक अतीत बीत चुका है, लाखों, करोड़ों और अरबों वर्ष तक। इतनी यात्रा को किसी प्रकार निरापद नहीं कहा जा सकता, विचारकों द्वारा यह एक स्वीकृत पक्ष है, कि मानव का सर्वप्रथम उद्भव किसी एक स्थान पर हुआ, और वहाँ से कालक्रमानुसार जीवन-साधनों की अपेक्षा तथा अन्य आवश्यक कारणों से धीरे-धीरे अपेक्षित दिशाओं में फैलता रहा। मानव-समाज के प्रथम प्रादुर्भाव का कौन-सा स्थान होगा, इस बहस में पड़ना बेकार है, जब कोई वर्ग मुख्य समाज से विमुक्त होकर स्थानान्तर में आश्रय के लिए बाध्य हुआ होगा, उसको ऐसा कदम उठाने के कारणों का विवरण देना आज संभव नहीं। हो सकता है, निवास स्थान की कमी अनुभव की गई हो; हो सकता है, जीवन-निर्वाह के अपेक्षित साधन उपलब्ध न रहे हों, उनमें न्यूनता आ गई हो, हो सकता है, परस्पर कोई अनिवार्य महान् संघर्ष उठ खड़ा हुआ हो, अन्य भी अनेक प्रकार के कारण जहाँ संभव हो सकते हैं, वहाँ यह भी कल्पना की जा सकती है, कि समाज में वेद मूलक पूजा पद्धति के विषय में विभिन्न विचार धारा उभर आई हों, वेदों की व्याख्या भी अपने विचारों के अनुरूप होने लगी हो, ऐसे आधारों पर नवीन विचार धारा को प्राचीन के साथ रहना असह्य हो गया हो, तब उस वर्ग ने सुविधानुसार किसी प्रदेशान्तर का आश्रय लिया हो। ऐसी दशा में समाज का विस्तार हुआ, पर उसके अनुरूप अपने मूल-रूप में वेद का प्रसार होने में बाधा आई। या तो विमुक्त वर्ग ने अपने समाज के लिये उसका आश्रय न लिया, अथवा आंशिक आश्रय लिया, आश्रय लेने पर भी मूल स्थान से कट जाने के कारण, तथा अन्तराल में चालू संपर्क न रह जाने के कारण कालांतर में रही-सही शृंखला

भी विच्छिन्न हो बिखर गई। समाज का वह विमुक्त वर्ग तथा विभिन्न कालों में इसी प्रकार से अनेक विमुक्त वर्ग जैसे-तैसे तात्कालिक कारणों से बाध्य होकर दूर-दूर तक आगे-आगे फैलते रहे; वैसे-२ अपने मूल स्थान से सर्वथा विच्छिन्न होकर एक नई जैसी संस्कृति के साथ नये समाज के रूप में संसार के मानव गणनापट्ट पर दिखाई देने लगे। उस समाज के मनीषियों ने जब यह कहा, कि संसार के पुस्तकालय में सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद आदि हैं, तब यह बात उन्होंने अवश्य कुछ साहस बटोर कर कही होगी। कुछ तथ्यों को इस रूप में समझा होगा। यह वयान हमें यह समझने के लिए आकृष्ट करता है, कि क्यों न हम इस बात को स्वीकार करें कि आदि मानव के प्रादुर्भाव के साथ 'वेद' प्रकाश में आया, जो वस्तुतः एक तथ्य है।

समाज के साथ 'ज्ञान' की इस लम्बी यात्रा की कहानी पर यदि गम्भीरता पूर्वक ध्यान दिया जाय, तो यह एक तथ्य भी कुछ स्पष्ट रूप में भलक आता है, कि मानव का प्रथम प्रादुर्भाव कहाँ हुआ ? इसके लिए परख की कसौटी है—आज तक चला आ रहा 'वेद' का निरंतर अनवच्छिन्न प्रवाह। उस समाज ने इस परम्परा को सुरक्षित रखा है, जो आज तक अपने मूल स्थान के साथ संसक्त प्रदेश में उसी प्रकार विद्यमान है, जैसे आज से लाखों वर्ष पहले वत्तमान था। मानवमात्र का उद्बोधक होने पर भी इसी कारण आज 'वेद' भारतीय संस्कृति का मूल आधार समझा जाता है।

एक स्पष्ट बात होते हुए भी हमें आज यह प्रयास अथवा उद्घोषण क्यों करना पड़ता है, कि 'वेद' ईश्वरीय ज्ञान है ? इसका कारण है—इस लम्बे यात्रा काल में उभारी गई—प्रतियोगिता। संसार के अनेक सामाजिक वर्ग अपने लिए अन्य 'ईश्वरीय ज्ञान' का दावा करते हैं। यदि वस्तुतः वे उस रूप में ईश्वरीय ज्ञान हैं, तो ईश्वर की न्यायप्रियता को वे चुनौती देते हैं, कारण यह है, कि जब ये तथाकथित 'ईश्वरीय ज्ञान' प्रादुर्भाव में आये, उसके पहले लाखों करोड़ों वर्षों से मानव समाज का प्रवाह संसार में चालू था, वे सब मानव उस ज्ञान से वंचित रह गये जो अनन्तर काल में सामने आया। तब कोई भी विचारशील यह कह सकेगा, कि उन मानवों के प्रति क्या ईश्वर ने यह अन्याय नहीं किया, जो उनको अपने उद्बोधक ज्ञान से वंचित रखा। उन-उन वर्गों के मनीषी इस प्रकार के अनौचित्यों के समीकरण के लिए विविध रूप में तर्कों का जाल बिछाते हैं, पर इस तथ्य-राज हंस को आज तक उसमें फंसाया नहीं जा सका, कि ईश्वरीय ज्ञान का प्रकाश आदि मानव के प्रादुर्भाव के साथ होना ही न्याय है; अन्यथा ईश्वर को उन दोषों से बचाना कठिन होगा, जो अन्याय एवं पक्षपात के दायरे में आ जाते हैं।

मानव के आदि प्रादुर्भाव के मूल स्थान भारत के निवासी समाज ने 'वेद' को सुरक्षित अवश्य रखा, पर

अनेक विघ्न बाधाओं से अभिभूत होकर भारतीय समाज पूर्णरूप वैदिक परम्परा के अनुसार अपने 'आचार' को उस प्रकार सुरक्षित न रख सका। एक समय था, जब शासन व्यवस्था तथा समाज व्यवस्था का नियमन करने वाले राजपरम्परा के सूत्रधार मनु ने कहा था, कि पृथ्वी के समस्त मानव इस देश में उत्पन्न हुए वेद-प्रवक्ता से अपने आचरणीय धर्मो-कर्तव्यों की शिक्षा ग्रहण करें। इस देश का जो आचार है, वही सदाचार है [मनु० २०; १८]। ऐसा वह देश कौन-सा है? इसका विवरण उसी राजशासन प्रवर्तक ने बताया था, तब पृथ्वी पर मानव का विस्तार अति संक्षिप्त था, इसलिए उक्त कथन में अतिरंजन की संभावना को अवकाश नहीं मिलना चाहिए। वह देश रहा है—सरस्वती और दृषद्वती [गंगा] नदियों के अन्तराल का भू-भाग। यहाँ के निवासियों का आचरण ही 'सदाचार' समझा जाता था। पर आज वह सब कहाँ है? स्वभाव दुर्बल मानव तत्कालिक आघातों से अभिभूत हुआ कहीं जा सकता है। वेदाचार का हामी यह मानव-समाज भी कहीं का कहीं आ पड़ा है, यही कारण है, आज वेद को भी ईश्वरीय ज्ञान की प्रतियोगिता पंक्ति में भाग लेने के लिये खड़ा होना पड़ रहा है। हमारा स्वेच्छा प्रवर्तित मिथ्याचार उस 'सदाचार' के साक्षित्व के लिए अपने को निसर्ग दुर्बल पाता है; यह अवस्था ही उसको अपने स्तर पर बनाये रखने के लिए इस दिशा में अनवरत प्रयास की प्रेरक है। आइये, इसे समझने का प्रयास करें।

जब कहा जाता है—वेद ईश्वरीय ज्ञान है, तब इसका तात्पर्य होता है—यह ज्ञान हमारे जैसे किसी पुरुष द्वारा प्रेरित नहीं है, वे पुरुष चाहे साक्षात्कृतधर्मा ऋषि हो क्यों न हों। इस रूप में वेद अपौरुषेय कहा जाता है। देहधारी पुरुष ज्ञान के किसी स्तर पर हो, वह भ्रम, प्रमाद, पद-लिप्सा आदि दोषों से अभिभूत रहता है। पर वेद रूप ज्ञान में इन दोषों का सर्वथा अभाव रहता है। यह इसी कारण है, क्योंकि परब्रह्म परमेश्वर देश, काल, वस्तु आदि के परिच्छेद से सर्वथा रहित एक परिपूर्ण तत्त्व है। उसका ज्ञान भी देश, काल आदि से परिच्छिन्न होना सम्भव नहीं। वह ज्ञान ब्रह्म का रूप है, ब्रह्म द्वारा आदि सर्ग में प्रेरित होता है। जिस माध्यम से यह प्रेरित होता है, वे अमैथुन आदि सर्ग के परमर्षि होते हैं। इस लोक में मानव जीवन के लिए पूर्ण ज्ञान वेदों में अन्त-निहित है। इसका यह तात्पर्य नहीं, कि ब्रह्म का इतना ही पूर्ण ज्ञान है। वेद ज्ञान मानव जीवन की उपयोगिता के लिये परिपूर्ण है। उपनिषद् जो वेद के एक सीमित अंग का विवरण देते हैं, आज तक समस्त संसार के विभिन्न कालवर्ती मूर्खन्य मनीषियों द्वारा इस रूप में स्वीकार किये गये हैं, कि वहाँ मानव जीवन के सर्वोच्च एवं अन्तिम तोपानों का बुद्धिमय सुस्पष्ट वर्णन है। मानव जीवन के

पूर्ण लक्ष्य-अभ्युदय और निःश्रेयस की प्राप्ति के अविकल साधनों का सर्वांग पूर्ण वर्णन वेदों में उपलब्ध है।

यद्यपि कहा जा सकता है कि आदि सर्ग के अतिरिक्त कालांतर में भी विशिष्ट व्यक्तियों के मस्तिष्क में ईश्वर-प्रेरणा का होना संभव है, पर ऐसा ज्ञान 'वेद' का रूप धारण नहीं कर सकता, यह ज्ञान केवल आदि सर्ग में होना आवश्यक है, जिससे समान रूप से मानव मात्र के द्वारा उसका सदा अपने अभ्युदय आदि के लिए उपयोग किया जा सके।

इस प्रकार वेद ज्ञान भ्रम, प्रमाद आदि से सर्वथा रहित है। ऐसा है? इसका विवेचन शास्त्रकारों ने सूक्ष्म स्तर तक करने का प्रयास किया है। यथामति इसका विवरण कतिपय सन्दर्भों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है।

१. वह ज्ञान स्वतः प्रमाण है, परतः प्रमाण नहीं साधारण व्यवहार में होने वाला पुरुष का ज्ञान साधनों की अपेक्षा रखता है, पर ईश्वरीय ज्ञान में ऐसी स्थिति का अवसर नहीं आता। गंभीरता से विचार करने पर यह तथ्य सामने आता है। कि ज्ञान के स्वतः प्रामाण्य का वास्तविक तात्पर्य क्या है। किसी भी वस्तु तत्त्व का निर्णय करने में अन्तिम सोपान 'ज्ञान' होता है। सम्पूर्ण लोक-व्यवहार अपने ज्ञान के आधार पर ही अवलम्बित होता है। कोई विषय-वस्तु तत्त्व है, अथवा नहीं है; इसका अन्तिम निर्णायक केवल 'ज्ञान' है। हम देखते हैं, कि विषय की सत्ता इन्द्रियों से, इन्द्रियों की मन से, मन की अहंकार एवं बुद्धि की ज्ञान स्वरूप आत्मा से निश्चित होती है। अज्ञान का अनुभव निश्चय भी ज्ञान ही है। परन्तु ज्ञान को प्रमाणित करने के लिए ज्ञान से भिन्न किसी पदार्थ की अपेक्षा कदापि नहीं होती। इसी स्थिति में ज्ञान का स्वतः प्रामाण्य निहित है।

प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय, [ज्ञान] इस चौकड़ी का प्रयोग समस्त लोक व्यवहार में होता देखा जाता है, कोई भी शस्त्रीय विवेचन इसके बिना आगे एक कदम नहीं बढ़ा पाता; पर यह भी यदि गहराई से विचारा जाय तो पहले तीन की स्थिति चौथे [ज्ञान] के बिना प्रकाश में नहीं आती। प्रमाता का प्रमातृत्व, प्रमाण का प्रमाणत्व, प्रमेय का प्रमेयत्व उसी अवस्था में अपनी सच्चाई की अभिव्यक्ति कर पाता है, जब 'ज्ञान' का प्रकाश हो जाता है। यह न होने पर प्रमातृत्व आदि का स्वरूप आत्मलाभ कर ही नहीं सकता, परिणाम हुआ, ज्ञान द्वारा ही ये प्रकाशित होते हैं; परन्तु ज्ञान के प्रकाश के लिये अन्य किसी की अपेक्षा नहीं रहती। वह स्वप्रकाश है। उक्त चौकड़ी में ज्ञान अपने से अन्य तीनों में एक अन्वित तत्त्व है। प्रमाता आदि का अस्तित्व पर, पर अवलम्बित है, ज्ञान से ही प्रमाण, प्रमेय आदि व्यवहार सिद्ध होते हैं, यही कारण है कि सूक्ष्मदर्शी मनीषियों ने ज्ञान को स्वतः प्रमाण माना है।

ऐसी अवस्था में वह ज्ञान जो वेद के रूप में प्रकाशित है, ईश्वरीय माने जाने पर ही उसका यह स्वरूप संभव है।

२. ज्ञान स्वयं प्रकाश है। वह कर्ता, कारण क्रिया एवं फल आदि के अधीन नहीं। कोई भी कर्ता, कोटि यत्न करके भी स्थाणु-ज्ञान को पुरुष-ज्ञान नहीं बना सकता; यद्यपि मान्यता कर्ता के अधीन होती है। वह अपनी मानी हुई वस्तु को गणेश माने या पाषाण, सूर्य माने या चाँद, उसमें चाहे कभी फेरफार कर दे, अथवा उसे भी छोड़ दे; इन सब बातों में वह स्वतन्त्र होता है; परन्तु यह सब 'ज्ञान' का स्वरूप नहीं है, यह कर्ता की अपनी कृति है, अपनी रचना है। वह इसे स्वयं घड़ता, बदलता, बिगाड़ता है, और इसे बाद में स्वतन्त्र मान लेता है। वस्तुतः यह कर्ता की मान्यता है। ऐसी मान्यताएँ प्रत्येक कर्ता की, सम्प्रदाय की, राष्ट्र की अपनी अलग-अलग हो सकती हैं; परन्तु 'ज्ञान सब का एक होता है। स्थाणु को भिन्न-भिन्न मनुष्य चोर, सिपाही, भूत आदि के रूप में मान सकते हैं, ऐसी मान्यता उनकी एक दूसरे से भिन्न हो सकती है; परन्तु ज्ञान सब का एक होगा, कि वह वस्तुतः स्थाणु है, पुरुष-भेद से ज्ञान में भेद नहीं हो सकता, क्योंकि किसी पुरुष द्वारा ज्ञान का निर्माण अथवा उसकी रचना नहीं होती। यदि थोड़ा गहराई से देखा जाय, तो वस्तुतः ईश्वर भी ज्ञान का निर्माण नहीं करता, वह कर्ता नहीं होता, क्योंकि वह स्वयं ज्ञान-स्वरूप है। यदि ईश्वर ज्ञान का कर्ता हो, तो ज्ञान रूप कर्म के पहले ईश्वर को अज्ञान स्वरूप स्वीकार करना पड़ेगा, जो किसी प्रकार संभव नहीं। ज्ञान का अभाव कभी किसी प्रमाण अथवा अनुभव से सिद्ध नहीं। उसका अनुभव अथवा प्रमाण से जानना भी तो ज्ञान रूप ही होगा। परिणाम यह, कि ज्ञान किसी साधन का साध्य नहीं है, वह सदा सिद्ध है, तथा स्वयंसिद्ध है, उसके कैसे भी कारण की कल्पना नितान्त असंगत है। वह स्वयं ईश्वर का रूप है, और उससे प्रेरित 'वेद' स्वप्रकाश ईश्वरीय ज्ञान है।

३—वह ज्ञान देश काल से परिच्छिन्न नहीं होता। वह सदा अनादि, अनन्त है। यदि ऐसा न हो, तो वह मानव मात्र का पथप्रदर्शन करने वाला नहीं माना जा सकता। जो ज्ञान किसी देश व काल-विशेष से सीमित रह जाता है, वह ईश्वरीय ज्ञान होने का दावा नहीं कर सकता। देशभेद व कालभेद उन पदार्थों में आश्रय पाता है, कभी और कहीं उद्भव में आते हैं। ज्ञान ऐसा नहीं तब क्या यह न्यायोचित होगा? कि अन्यगत भेद को अन्यत्र आरोपित किया जाय? काल और देश का कहीं भी अभाव नहीं है। जिस काल में काल के अथवा जिस देश में देश के अभाव की कल्पना की जायगी, वह भी कोई देश ही होगा। अभाव सांश वस्तु में होता है ब्रह्म अथवा ईश्वर निरंश है, वह अभाव रहित है। पूर्व-पश्चिम

एवं दैर्घ्यविस्तार आदि अथवा ज्येष्ठ-कनिष्ठ एवं दिन-मास आदि वस्तुनिष्ठा होते हुए भी ज्ञानाश्रित रहते हैं। देश काल को अभिव्यक्ति करने वाला ज्ञान देश-काल से परिच्छिन्न होना संभव नहीं, वह ज्ञान ब्रह्म का रूप है। सार्वदिक, सार्वत्रिक देश-काल का अभिव्यञ्जक ज्ञान असावदिक असार्वत्रिक असंभव है, फलतः नित्य व्यापी वेद-ज्ञान ईश्वरीय ही हो सकता है।

४. वेद पुस्तक अथवा ध्वनिसमूह या वर्ण समूह नहीं है, वह केवल 'ज्ञान' है; और ये सब उसके प्रतीक हैं। उस ज्ञान में हम यथार्थ-अयथार्थ अथवा परोक्ष-अपरोक्ष के भेद की कल्पना भी नहीं कर सकते। यह ज्ञान सदा यथार्थ सदा अपरोक्ष है। उनमें इन भेदों का भी अवकाश नहीं। यद्यपि आये दिन व्यवहार में साधारणतया हम ज्ञान में ऐसे भेद का प्रयोग करते हैं, पर गंभीरता पूर्वक विचार कर यदि देखा जाय, तो वस्तुतः हम विषयगत भेद को ज्ञान पर आरोपित कर लेते हैं। स्वप्न में हम हाथी देखते हैं। यहाँ स्वप्न का हाथी भूठा है अयथार्थ है, परन्तु स्वप्न में हाथी का देखना झूठा नहीं है। जब जाग जाने पर हम उसका स्मरण करते हैं, तो हमारी यही प्रतीति होती है, कि वहाँ 'हाथी नहीं था'। ऐसी प्रतीति नहीं होती कि हमने 'हाथी देखा नहीं था'। 'देखना' सत्य है, 'हाथी' भूठा है, हाथी की असत्ता ज्ञान की असत्ता की प्रयोजक नहीं हो सकती। हम अविचार दशा में हाथी की अयथार्थता का आरोप ज्ञान पर कर लेते हैं। जाग्रत में भी जब कोई सीप की चाँदी देखता है, तो वहाँ देखना भूठ नहीं है, वस्तु-चाँदी झूठ है। उसका आरोप ज्ञान पर कर लिया जाता है, यह अविचारित दशा का व्यवहार ही समझना चाहिये।

इसी प्रकार ज्ञान की परोक्षता भी विचारणीय है। वस्तुतः परोक्ष-अपरोक्ष के विषय घट-पट आदि पदार्थ होते हैं। ज्ञान कभी अपने से दूर नहीं होता। यदि ऐसा मान लें—पृथ्वी पर घट है, और ज्ञान अन्तरात्मा में; तब भी घट ज्ञान अपने अन्दर ही रहा। अतीत या अनागत घट का ज्ञान भी वर्तमान एवं अपरोक्ष है, घट आदि विषय ही अतीत-अनागत अथवा परोक्ष होते हैं। घट आदि विषयगत परोक्षता का आरोप ज्ञान पर कर लिया जाता है। वस्तुतः ज्ञान सदा अपरोक्ष है। उस अनादि-अनन्त अनश्वर ज्ञान की भावना कर साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों ने कहा—'त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि'। ऐसा वेद-ज्ञान ईश्वरीय के अतिरिक्त अन्य कुछ हो नहीं सकता। इसी आधार पर तीसरे ब्रह्मसूत्र की व्याख्या करते हुए आचार्य शंकर ने बड़े उदात्त शब्दों में वेदों की महिमा का वर्णन करते हुए लिखा है—

“महत् ऋग्वेदादेः शास्त्रस्थानेकाविद्यास्थानोपबृंहितस्य प्रदीपवत्सर्वार्था व ज्योतिनः सर्वज्ञकल्पस्य योनिः कारण ब्रह्म।

(शेष पृष्ठ २४ पर)

साप्ताहिक सत्संग में सुनाएं :

पंच महायज्ञ महिमा

स्व० महात्मा प्रभु आश्रित जी

ओ३म् उप प्रागात्परमं यत्सधस्थमवां, अच्छा पितरं मातरं च ।

अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्या, अथाशास्ते दाशुषे वार्याणि ॥

य० २६।२४॥

पदार्थ :—हे विद्वान् ! (यत्) जो (अर्वान्) जानी जन (जुष्टतमः) प्रतिशय कर सेवन किया हुआ (परमम्) उत्तम (सधस्थम्) साधियों के स्थान (पितरम्) पिता (मातरम्) माता (च) और (देवान्) विद्वानों की (अद्य) इस समय (आ, शास्ते) अधिक इच्छा करता है (अथ) इसके अनन्तर (दाशुषे) दाता जन के लिए (वार्याणि) स्वीकार करने और भोजन के योग्य वस्तुओं को (उप, प्र, प्रागात्) प्रकर्ष करके समीप प्राप्त होता है उसको (हि) ही आप (अच्छ, गम्याः) प्राप्त हुईए ।

भावार्थ—जो लोग न्याय और विनय से परोपकार को करते हैं वे उत्तम उत्तम जन्म, श्रेष्ठ पदार्थों, विद्वान् पिता और विदुषी माता को प्राप्त हो और विद्वान् के सेवक होके महान् सुख को प्राप्त हों वे राज्य शासन करने को समर्थ होंगे ।

संसार के अन्दर जीवात्मा के लिए दुर्लभ क्या है ? दुर्लभ चीज वह होती है जो कष्ट से प्राप्त होती है और समीप होते हुए भी दूर दृष्टि आती है । सुलभ चीज वह है कि जो बिना इरादे के अपने आप हो जाती है, स्वाभाविक हो । जैसे मैं आँख से देख रहा हूँ परन्तु मेरी पलकों (निमेष) अपने आप नीचे ऊपर हो रही हैं, बिना इरादे के ।

यदि मुझे निरन्तर ध्यान से देखना पड़े तो पलकों को रोकना पड़ेगा इससे थोड़ी देर में मैं थक जाऊँगा । ऐसे ही बोलते हुए, चलते हुए, सोते हुए अपने आप श्वास आता जाता और रुकता है । यदि मुझे श्वास को दीर्घ करना हो, या रोकना हो तो दोनों अवस्थाओं में कष्ट प्रतीत होगा ।

जीवात्मा के लिए दुर्लभ जन्म मनुष्य का है । कहने को तो हम सब कहते हैं कि मनुष्य जन्म दुर्लभ है । परन्तु हम इसकी कीमत नहीं जानते क्योंकि हमने इसको जाना नहीं, किन्तु सन्तों ने तो अन्तर दृष्टि से जाना है और कहा है कि :—

मानुष्य जन्म दुर्लभ है मिले न बारम्बार ।

तखवर से पत्ता भड़े फिर न लाये डार ॥

मनुष्यों और पशुओं की गिनती हो गई परन्तु शेष जीव जन्तुओं की गिनती नहीं हो सकती ।

पृथ्वी के थोड़े से टुकड़े को खोद कर कीड़ी और मकोड़ों को देखें तो असंख्यात होते हैं । कुत्ते को तोय-तोय करके बुलाते हैं और इसे खिलाते हैं किन्तु मनुष्य दुर्लभ जीवन वाला होता हुआ भी दर-दर मांगता फिर रहा है परन्तु कोई उसे नहीं देता । मैं अफ्रीका से आया तो अपनी आँखों देखा, बम्बई के एक होटल से रोटी खाकर ज्यों ही कुत्ते को ग्रास डालने के लिए उठा तो बहुत से आदमी बूढ़े, बच्चे, स्त्रियाँ उस ग्रास पर टूट पड़े और परस्पर लड़ने लगे, वह ग्रास नाली में जा पड़ा और वह उठाकर किसी आदमी ने खा लिया ऐसी दशा होते हुए भी मनुष्य पशु बनना नहीं चाहता । यदि किसी को हम कुत्ता, गधा या उल्लू के नाम से पुकारें तो उसे क्रोध आ जायगा इसलिए वह जीव भाग्यवान् है जिसे मनुष्य का जन्म मिला । उससे भी वह भाग्यवान् है जिसे सुख-सम्पत्ति की दुर्लभ वस्तु प्राप्त है ।

सुख के साधन हैं दो

एक तो सुख मिलता है जड़ पदार्थ से अन्न, जल, वस्त्र महल आदि से और दूसरा मिलता है चेतन से । चेतन में सबसे पहले माता-पिता अच्छे, नेक और धर्मात्मा हों ताकि बच्चे को सुख मिल सके । पशुओं के भी माता-पिता हैं परन्तु उन्हें सुख कहाँ ? मक्खी, मच्छर, बिच्छू आदि मल से पैदा होते हैं । उन्होंने ऐसे ही मलीन कर्म किये जिससे उनकी उत्पत्ति, पोषण, रहना, सहना, मरना, जीना मल में ही है । उनके कोई माता-पिता नहीं । ऐसे भी जीव हैं जिनके माता-पिता तो हैं परन्तु उनकी माता का दूध प्राप्त नहीं जैसे पक्षी और मुर्गी आदि । ऐसे जीव भी हैं जिनको माता से दूध तो मिलता है परन्तु माता की गोद प्राप्त नहीं जैसे गाय, घोड़ा आदि पशु । एक मनुष्य ही ऐसा प्राणी है कि जिसे माता-पिता की गोद और माता का दूध तथा छाती का प्रेम प्राप्त है । ऐसे कहने को तो हम जो अच्छा आदमी है उसे धर्मात्मा कह देते हैं किन्तु धर्मात्मा तो वह है जो सत्य और न्याय से आचरण करता है जिसने सब कुछ प्राप्त कर लेने पर सत्य और न्याय को धारण नहीं किया वह परमात्मा को नहीं पा सकता ।

अच्छे माता-पिता के पश्चात् मनुष्य को स्त्री की आवश्यकता है, तो स्त्री सुलक्षणी हो, गुण कर्म स्वभाव के अनुकूल हो फिर चाहिए सन्तान और सन्तान हो तो आज्ञाकारी। मनुष्य सामाजिक प्राणि है उसे मित्र की भी आवश्यकता है, मित्र हो तो सच्चा, केवल आपत्ति में सहायता करने वाला सच्चा मित्र नहीं कहलाता, बल्कि मित्र तो वह है जो कुमार्ग पर न जाने दे बुराई से हटाये। ऐसा हाँ में हाँ मिलाने वाला न हो जैसे छोटी आयु के विवाह में सहयोग देने वाला ऐसे मनुष्य को मित्र नहीं कहते अपितु अमित्र कहते हैं। शत्रु तो वह नहीं क्योंकि उसकी भावना खराब नहीं परन्तु वह अज्ञान से मित्रता करता है इसलिए अमित्र है, वेद भगवान् ने भी कहा है कि :—

“अभयं मित्रादभयममित्राद्”

मनुष्य का स्वभाव है कि वह सीधा मार्ग ढूँढता है, यदि उसे किसी टेढ़े मार्ग पर खड़ा कर दो तो वह सीधी सड़क ढूँढेगा, कुराह से वचेगा। परन्तु पशु को सीधी सड़क पर भी खड़ा कर दो तो भी वह सीधा नहीं जायेगा चाहे घोड़ा सिधायी हुआ भी हो, बिना मनुष्य के हाथ में बाग होने के सीधा नहीं जायेगा। भाग्यशाली मनुष्य को नौकर की भी आवश्यकता है। नौकर वफादार, विनम्र हो, आज्ञाकारी और सबसे बड़ी बात वह हितचिन्तक हो। मनुष्य को आगे अपने पथ-प्रदर्शन के लिए गुरु भी चाहिए किन्तु निःस्वार्थ, निश्चल, निष्कपट हो। इससे भी वह बड़ा भाग्यवान् है जिसमें मनुष्यत्व हो। कोई व्यक्ति अन्दर की आँखों से अपने आप को बड़ी मुश्किल से मनुष्य कह सकेगा वह बड़ा भाग्यवान् है जो दूसरों को मनुष्य बना सके तथा अपनी संतान को भी मनुष्य बना सके। वेद भगवान् ने कहा भी है कि:—

मनुर्भव जनया दैव्यं जन्म

अर्थात् मननशील मनुष्य बन और दिव्य सन्तान (अच्छे गुण कर्म स्वभाव वाली) को उत्पन्न कर।

अति दुर्लभ वह है, जो सब कुछ प्राप्त होते हुए भी अपना छटकारा कर सके, आवागमन के चक्कर से केवल मनुष्य ही छूट सकता है। मनुष्य इस ब्रह्माण्ड के सामने एक छोटासा तीन हाथका है और परमेश्वर तो एक ब्रह्माण्ड ज्ञया अनेकों ब्रह्माण्डों से भी बड़ा है, किन्तु इस छोटे से मनुष्य जीव के लिए इतना महान् परमात्मा इतना ही बड़ा है जितना पुत्र के सामने पिता क्योंकि पिता और पुत्र एक ही हैं। परन्तु वह दो नहीं कहलाते उस वक्त दो कहलायेंगे, जब पृथक् 2 हो जायेंगे। संसार के अन्दर सब सौदागरी है, भगवान् भी बड़ा सौदागर है। यजुर्वेद में भगवान् ने कहा है—

वस्नेव विक्रीणावहाइपमूर्जं शतक्रतो ॥

य० 3।49

शब्दार्थ—हे (शतक्रतो) असंख्यात कर्म वा (विशेष बुद्धि) वाले जगदीश्वर आपकी कृपा से हम यज्ञ कराने और यज्ञ करने वाले विद्वान्, होता और यजमान दोनों (इष्टम्) उत्तम 2 अन्न आदि पदार्थ (ऊर्जम्) पराक्रम युक्त वस्तुओं को (वस्नेव) वंश्यों के व्यवहारों के समान (विक्रीणावह) दें वा ग्रहण करें।

ओ३म् देहि मे ददामि ते नि मे वेहि नि ते दधे।

यजु० 3।50॥

शब्दार्थ—हे मित्र तू [मे] मुझे यह वस्तु [देहि] दे मे (ते) तुझको यह वस्तु (ददामि) देऊँ वा देऊंगा तथा तू (मेरी) यह वस्तु (निवेहि) धारण कर, मैं (ते) तुम्हारी यह वस्तु (निदधे) धारण करता हूँ।

यदि हमसे कोई प्राण ले ले तो भी मर जायेंगे यदि हम प्राण किसी को अर्पण कर दें तो भी मर जावेंगे। प्रत्येक इन्द्रिय देना और लेना है। परमेश्वर का काम भी देना और लेना है। हम भगवान् को क्या दें जिससे हमको मनुष्य का जन्म मिले। कोई ऐसा काम करना पड़ेगा जिसमें कुछ कष्ट प्रतीत हो। वह काम जो पशु नहीं कर सकता। पशुओं को यदि सिखाया भी जाय तो वह दूसरे पशुओं को नहीं सिखा सकते। परन्तु मनुष्य जो कुछ सीखता है वह दूसरे को सिखा सकता है।

धन दौलत आदि अन्न, जल, वस्त्र से अधिक दान केवल विद्या का ही है तथापि शास्त्रकारों ने कहा है कि—

सर्वेषां एव दानानां ब्रह्म दानं विशिष्यते ॥

जिससे मनुष्य जन्म हो सकता है विद्या पढ़ना और पढ़ाना मनुष्य का काम है। प्रत्येक मनुष्य विद्या नहीं पढ़ा सकता है तो इसका अर्थ है कि कोई भी मनुष्य न बने किन्तु प्रत्येक मनुष्य अपनी सन्तान को सिखाता ही है और विद्या के लिए तन, धन और अन्न का दान देना भी विद्या का दान है। विद्या तो वही है जो सत्य विद्या है जो परमेश्वर का ज्ञान करा दे विद्या से प्रकाश हो जावे जो प्रभु का ज्ञान करा सके। ईश्वर का नाम लेने से भी मनुष्य का जन्म तो मिलेगा। वाणी और हाथ से यदि काम किया है चाहे मन खोटा हो तो भी मनुष्य बनावेगा प्रत्येक अवस्था में वाणी और हाथ के किये कर्म का फल मिलेगा। प्रत्येक मनुष्य को बलिवेश्वदेव यज्ञ अवश्यमेव करना चाहिये। जो आदमी चिऊंटी से लेकर हाथी पर्यन्त पशु पक्षी आदि और वृक्ष, दीन, दुःखी और कंगाल की सेवा करता है उसे सम्पत्ति के साधन प्राप्त होते हैं। लोग तीन मंजिले मकान पर रहते हैं, फूत्ते आदि कहाँ पहुँचें। भिखारी बेचारे की वहाँ पहुँच कहाँ? किन्तु हमारी जाति में ऋषि मुनियों ने यह बड़ी सहूल प्रथा चलाई थी, अब भी कस्बों और गांवों में पक्षियों के लिए बाजरा आदि और चिऊंटियों के लिए तिल शक्कर आदि बचेरते हैं।

किन्तु बलिर्बल देव यज्ञ के स्वरूप को जो जान कर ऐसा दान करता है उसको सुख सम्पत्ति के सब साधन प्राप्त होते हैं। यह तो जड़ सुख के साधन बतलाए हैं।

चेतन सुख के साधन

अब चेतन सुख के साधन हैं जो पीछे कह चुके हैं स्त्री, पुत्र, मित्र, भृत्य सब वफादार नेक धर्मात्मा मिलते हैं। यह पितृयज्ञ के स्वरूप को जानकर जो ऐसा करता है उसको यह सब साधन मिलते हैं।

अतिथि यज्ञ के करने से मनुष्य को निष्कण्ट गुरु मिलता है हम अभी अतिथि को समझे नहीं हैं। अतिथि तो परमेश्वर ही है। हमारे लोकोक्ति है “मेहमान आया भगवान् आया” अतिथि को परमेश्वर का पुत्र कहा गया है। अतिथि वह है जो परमेश्वर के वेद ज्ञान का निःस्वार्थ प्रचार संसार के कल्याण के लिए करे अर्थात् वह अपने पिता परमेश्वर का काम करने आया है जो किसी के पुत्र की सेवा करता है उसके माता पिता आपसे आप उस पर प्रसन्न हो जाते हैं। उदाहरणार्थ यदि कोई मेरे पुत्र का सत्कार करता है तो मेरा पुत्र जानकर मेरी ही सेवा करता है। यदि कोई तिरस्कार करे और मुझे ज्ञात हो जाये तो मुझे उससे दुःख होना आवश्यक है। परमेश्वर तो सर्वज्ञ और सर्वान्तर्यामी है। उसे तो उसी दम जान जाता है। अथर्व वेद और कठ उपनिषद् में भी आया है कि उस मनुष्य का जप आदि सब नष्ट हो जाता है जिसके द्वार से अतिथि खाली पेट चला जावे या उसका तिरस्कार होवे। ज्ञान परमेश्वर की निज सम्पत्ति है धन दौलत आदि साधारण चीज है जैसे पुत्र की अपनी कोई चीज नहीं है उसके पिता की है। जो भगवान् का काम करने आया है उसका निरादर करने से सब कुछ समाप्त हो जाता है।

दान का फल

एक सच्चा दृष्टांत पहले बचपन में मेरी बहन का सुनाया हुआ सुनिये—मैं तो उसको पहले एक मनघड़न्त कथा रोचक रूप से समझता था परन्तु अब मैंने पढ़ा तो सब पाया। किसी महा कंजूस घनी के घर एक नई व्याही स्त्री भोजन बना रही थी। एक साधु अतिथि द्वार पर भोजन के लिए आये उसने उठकर जोर के शब्दों में साधु को कहा (जब उसका समुर बैठा हुआ भोजन कर रहा था) कि ‘इस घर में कुछ भी नहीं।’ साधु ने कहा ‘क्या खा रहे हैं?’ तो उसने यह कहा ‘बासी खा रहे हैं।’ फिर साधु ने कहा ‘आगे क्या करेंगे?’ देवी ने कहा ‘तेरे जैसे हो जायेंगे।’ साधु तो चला गया परन्तु उसके समुर को बहुत क्रोध आया कि इतना बड़ा भूठ बोल रही है। हमारा अपमान कर रही है। समुर ने जब पूछा तो वह ने नम्रता पूर्वक कहा कि “मैंने ठीक कहा है। आप उस साधु को बुलाकर पूछ लेंगे।” उसके समुर ने साधु को बुलाकर

पूछा तो साधु ने उत्तर दिया कि “यह ठीक कहती है जब से यह आपके घर में आई इसने आपको दान करते या आपके घर दान होते नहीं देखा इसलिए कहा कि यहाँ कुछ नहीं है और पिछले कर्मों की कमाई को ही खा रहे हैं अर्थात् बासी खा रहे हैं। तभी ठीक ही कहती है। फिर मैंने पूछा आगे क्या करेंगे तो कहा आप जैसे हो जायेंगे। इसमें भूठ या अपमान की कोई बात नहीं। देवी ने सच्ची और वास्तविक बात ही कही है। जो आज बीज नहीं बोता वह कल काटेगा क्या? “समुर की बुद्धि में यह उत्तर थोड़ा दान करने का भाव पैदा हुआ तो वह से कह दिया कि हमारे घर में यह जो चने की बोरियाँ भरी पड़ी हैं आने वाले अतिथि लोगों को दिया करो। दूसरे दिन उन चनों को जो गले सड़े और समुर ने दानमें देने के लिए आज्ञा दी थी, पीसकर समुर के आगे चने की रोटी परोस कर रख दी। फिर समुर बहुत नाराज होने लगे कि मैंने तुम्हें अपने लिए थोड़ा कहा था। वह देवी बोली “पिता जी! मैंने तो आपकी आदत बनाने के लिए ऐसा किया है क्योंकि आगे आपको ऐसी ही मिलेगी। फिर आप को कष्ट न हो क्योंकि जैसा कोई दान करता है वैसा ही पाता है।” तबसे उस घनी की काया ही पलट गई और उसे ऐसी लग गई कि उसने आज्ञा दी कि अब खूब दिल खोल कर अन्न खिलाया करो और कोई द्वार पर आया अतिथि खाली न जाये। स्वयं भी साधु सन्त सेवा में निमग्न हो गया। खूब दान पुण्य करने लगा इससे परमेश्वर ने उसे बड़ा भाग्य लगाया आज यह विड़ला बंधु दानवीर विख्यात उस देवी के पुत्र सब संसार के सामने हैं। यह देवी दानवीर विड़ला की माँ है।

अतिथि सेवा

इस द्रव्य यज्ञ करने से भगवान की प्रजा को तो बांध सकता है परन्तु परमेश्वर को नहीं। कारण यह कि उसमें “अहम्” भाव रह जाता है क्योंकि शुद्ध वायु जल अन्न सद कुछ प्रजा के लिए होता है परमेश्वर के लिए नहीं। इसलिए परमेश्वर को नहीं पा सकता किन्तु अतिथि मनुष्य को खिलाने से जो उसके अन्दर रक्त मांस अस्थि आदि जो कुछ भी बना उसके खिलाने से उसका भागीदार होगा अतिथि परमेश्वर का भजन करता है। मन और जिस भाव से खिलाया वह सब कुछ परमेश्वर के आगे रखेगा क्योंकि इससे न केवल स्थूल शरीर बनता है बल्कि सूक्ष्म शरीर भी बनेगा। कहावत है “जैसा अन्न वैसा मन” जैसा पानी वैसी बानी” “जैसा धी वैसी धी।” हम जब किसी एक इन्द्रिय आंख कान और जिह्वा को नहीं जीत सकते तो मन को कैसे जीत सकेंगे। मेरी आंख, कान नासिका, जिह्वा में अन्न है, अन्न के बिगड़ने से सब कुछ बिगड़ जाता है। अतिथि तो शरीर के लिए नहीं बल्कि भजन के लिए खाते हैं। अतिथि की सेवा नहीं की या

जन-ज्ञान साप्ताहिक, १४ मार्च, १९७९

गन्दा खिलाया तो आपके हिसाब में वैसा ही जमा हो जाएगा। आपको वैसा ही गन्दा फल मिलेगा अर्थात् अंध-कारमय जीवन, अज्ञानमय जीवन होगा और पथ-प्रदर्शक गुरु कोई नहीं मिलेगा। गुरु तो वह है जो अन्धकार का नाश कर दे और मन में प्रकाश कर दे। दूसरे को मनुष्य वह बना सकता है। जिसमें तप और त्याग हो। हम कब त्यागकर सकते हैं, जब हमें अपने बच्चों को प्यार करने का अवकाश भी नहीं। जब तक मनुष्य भक्त नहीं तब तक त्याग नहीं कर सकता। जो महान पुरुष हुए हैं वे भक्त थे। भगवान का रास्ता वह बता सकता है जो भगवान का भक्त है। भक्त तो छुटकारा चाहता ही नहीं भगवान की भक्ति चाहता है। वह तो चाहता है ज्ञान, जो परमेश्वर की निज सम्पत्ति है और छुटकारा होता है ज्ञान से। प्रकृति और परमेश्वर के भेद करने का जो ज्ञान है वही ज्ञान है और जब तक ऐसा ज्ञान नहीं तब तक विषय वासना में फंसा रहता है। मनुष्य को परमेश्वर की भक्ति से ही परमेश्वर का ज्ञान होगा इसलिए मनुष्य को मनुष्य जन्म सफल करने के लिए सावधान हो जाना चाहिए। इस प्रकार पञ्च महायज्ञों की उपयोगिता और उनके लाभ स्पष्ट ज्ञात होते हैं, जैसे—

(१) ब्रह्म यज्ञ से मनुष्य योनि तो अनिवार्य ही है इसके अतिरिक्त आध्यात्मिक लाभ अनेक हैं। ब्रह्म यज्ञ में जप, स्तुति, प्रार्थना, उपासना, सत्संग, स्वाध्याय सम्मिलित हैं। मनुष्य के अन्तःकरण को काम, क्रोध, मोह आदि कुवृत्तियों के कारण अपवित्रता और आधीनता रहती है सो इन सब का पृथक् २ लाभ यह है कि उपासना से मन जो मोह से अपवित्र होता है वह पवित्र हो जाता है स्तुति से चित्त की शुद्धि होती है प्रार्थना से अहंकार और जप सत्संग स्वाध्याय से बुद्धि की पवित्रता होती है क्योंकि बुद्धि लोभ से, मन मोह से, चित्त काम से, वाणी क्रोध से, कान अहंकार से अपवित्र होने हैं।

(२) देव यज्ञ से जहाँ बाह्य रूप में संसार के भूत प्राणियों को नीरोगता, सुख सम्पत्ति, जल, अन्न, वायु की शुद्धि होती है वहाँ आध्यात्मिक रूप से सूक्ष्म शरीर की पवित्रता होती है, सूक्ष्म शरीर के पवित्र रहने से ही आत्मिक बल बढ़ता है।

(३) पितृ यज्ञ से जहाँ उत्तम माता, पिता, स्त्री, पुत्र, मित्र, भृत्य की प्राप्ति होती है वहाँ आध्यात्मिक रूप से वाणी की शुद्धि होती है, वाणी में कोमलता और मधुरता प्राप्त होती है।

(४) अतिथि यज्ञ से समृद्धि, धन दौलत के अतिरिक्त जहाँ निष्कपट गुरु की प्राप्ति होती है वहाँ सन्त, महात्मा, विद्वान, गुरुजन की सत्कार सेवा से, अमृत वचन श्रवण से कानों की पवित्रता होती है जिससे मनुष्य बुराईयों से दूर और भलाईयों के समीप हो जाता है।

जन-ज्ञान सप्ताहिक, १४ मार्च, १९७६

(५) बलि वैश्व देव यज्ञ से सब जड़ पदार्थ सुख-साधनों की प्राप्ति के अतिरिक्त मंत्री करण आदि गुण आध्यात्मिक रूप से प्राप्त होते हैं और आँखों को अत्यन्त पवित्रता प्राप्त होती है और दुई के दोष से मुक्त होता है।

इसलिए प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि नित्य-प्रति पंचमहायज्ञों को करके लाभ उठाये और दुर्लभ वस्तु की प्राप्ति के लिए सदैव अपने जीवन में प्रयत्नशील रहें। प्रभु से प्रार्थना है कि हम ऐसा कर सकें।

अच्छे बच्चे सब को प्यारे !

अच्छे बच्चे सबके प्यारे
सदा सत्य का ही व्रत धारें

सत्यव्रती बन कर कुछ काम
चमकाओ अपना भी नाम
कर्मठ बनो न अवसर खोना
समय न मिलता पुनः सलोना

सभी प्रेम से तुम्हें पुकारें
अच्छे बच्चे सबके प्यारे

वीर शिवा से शूर बनो तुम
नहीं कभी पर क्रूर बनो तुम
तुम प्रताप से हो व्रतधारी
मानेगी फिर दुनियां सारी

विश्व लगाएगा जयकारे
अच्छे बच्चे सबके प्यारे

कभी समय व्यर्थ मत खोना
हर क्षण ही होता है सोना
करो समय पर सारे काम
लेकर परम पिता का नाम

चमके नाम तुम्हारे न्यारे
अच्छे बच्चे सबके प्यारे

—नरेन्द्रपाल सिंह

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है !

वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

इस नियम के दो भाग हैं। प्रथम भाग में वेद को सब सत्य विद्याओं का पुस्तक कहा गया है। अपनी संज्ञा करके तो वेद संख्या में एक ही है इसी कारण इस नियम में वह एक वचन से ग्रहण किया गया है। इससे यह भ्रान्ति नहीं होनी चाहिए कि अर्थ भेद से भी पुस्तक रूप में वह एक ही है। इस रूप में वेद चार हैं जिनके नाम हैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद। नियम के द्वितीय भाग में आर्यों के मुख्य कर्तव्य का निर्देशन किया गया है।

अब से एक शती पूर्व वेद को सब सत्य विद्याओं का पुस्तक बतलाकर महर्षि दयानन्द जी ने बड़े साहस का परिचय दिया है। इस पर संक्षेप में यहाँ विचार करना आवश्यक है। अब से लगभग ५ सहस्र वर्ष पूर्व महाभारत युद्ध के पश्चात् भारत ही नहीं समस्त संसार का अधः

भी वेद में समावेश कर लिया। ब्राह्मण ग्रन्थ व उपनिषदों में नचिकेता, याज्ञवल्का, मैत्रेयी, गार्गी, जनक, अश्वपति, हरिश्चन्द्र इत्यादि का इतिहास है। इन ग्रन्थों को वेद समझने से एक भ्रान्ति यह फैल गई कि वेद में इतिहास है। सायण महीधर और उव्वट आदि के भाष्य का अनुकरण करके पाश्चात्य विद्वानों ने इस विचार धारा को बहुत फैलाया। वेदों में इतिहास की भ्रान्ति का एक प्रमुख कारण यह है कि अनेक पौराणिक पुरुषों, राजाओं, ऋषियों; नदियों आदि के नाम वेदों में उपलब्ध हो जाते हैं। वेदों में आए हुए ऐसे अनेक नाम किसी व्यक्ति या स्थान विशेष के वाचक न होकर योगिक हैं और योगिक होने के कारण ही गुणवाची हैं।

२. कुछ आचार्यों ने वेद मन्त्रों के आधार पर यज्ञों में पशुहिंसा का विधान सिद्ध कर दिया जबकि मन्त्र संहिताओं में इसका कहीं भी विधान नहीं है। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि अनेक विचारशील लोगों को वेदों

यह नियम हमने निरन्तर पढ़ा है, घोषणाएं भी की हैं पर पिछले १०० वर्षों में हमने क्या किया 'वेद' के लिये। कितने घरों में वेद पहुंचाएं ?.....
झूठी घोषणाओं से हम कब तक सब की आंखों में धूल झोंकते रहेंगे—संपादक

पतन आरम्भ हो चुका था। सच्चे वैदिक विद्वानों के अभाव में वेद के सम्बन्ध में भ्रान्तियाँ मिलने लगी थीं। आर्यों के हृदय में वेद के प्रति आस्था तो रही, किन्तु इस आस्था का उपयोग घृणित अनैतिक कृत्यों और अन्य विश्वासों के समर्थन में किया जाने लगा। मध्यकाल में शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, बल्लभाचार्य सायण-उव्वट महीधर आदि भाष्यकारों ने वेद को परम प्रमाण माना किन्तु उन्होंने कुछ ऐसी भयंकर भूलें भी कीं कि जिनके कारण अनेक पाश्चात्य विद्वानों और उनका अनुकरण करने वाले भारतीय विद्वानों ने वेदों के विषय में अनेक भ्रान्त धारणाएँ बना लीं। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं :—

१. वेद शब्द से अभिप्राय ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद इन चार मन्त्र संहिताओं से है। सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर ने इन चारों वेदों का प्रकाश किया। वेदों की व्याख्या रूप में बहुत काल पश्चात् ऋषियों ने ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक व उपनिषदों की रचना की। केवल चार वेद ही ईश्वर कृत होने से स्वतः प्रमाण हैं, शेष ग्रन्थ परतः प्रमाण हैं। इन मध्यकालीन आचार्यों और भाष्यकारों ने वेदोक्त ग्रन्थों ब्राह्मण, आरण्यक व उपनिषदों को

से घृणा हो गई।

३. इन भाष्यकारों ने अपने ग्रन्थों में एक ईश्वर के स्थान पर सैंकड़ों देवी-देवताओं की पूजा का विधान किया जो वस्तुतः वैदिक शिक्षा के सर्वथा विरुद्ध था। वेदों में सैंकड़ों मन्त्र ऐसे हैं जिनमें स्पष्टतया एकेश्वरवाद का प्रतिपादन किया गया है। इस प्रसंग में महर्षि दयानन्द जी ने ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में लिखा है (प्रश्न) कितने ही आजकल के आर्य और यूरोप देशवासी अर्थात् अंगरेज आदि लोग इसमें ऐसी शंका करते हैं कि वेदों में पृथिव्यादि भूतों की पूजा कही है। वे लोग यह भी कहते हैं कि पहिले आर्य लोग भूतों की पूजा करते थे, फिर पूजते-तूजते बहुत काल पीछे उन्होंने ईश्वर को भी पूज्य जाना था। (उत्तर) यह उनका कहना मिथ्या है, क्योंकि अग्नि आदि नामों करके वेदोक्त प्रमाण से एक परमेश्वर की ही उपासना करते चले आये हैं।

४. इन लोगों ने वेद मन्त्रों के ऐसे अर्थ किये हैं जो सर्वथा असत्य, अश्लील अयुक्त और असम्भव हैं। “गणानां त्वा गणपतिः” मन्त्र का महीधर ने इतना अश्लील अर्थ किया है कि उसको पढ़कर लज्जा के मारे सिर नीचे

भुक्त जाता है। महर्षि दयानन्द जी ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में इस मन्त्र का सही अर्थ देने के बाद दुःख से लिखते हैं कि 'विचारना चाहिए कि इस सत्य अर्थ के गुप्त होने और मिथ्या नवीन अर्थों के प्रचार होने से मनुष्यों को भ्रान्त करके वेदों का कितना अपमान कराया है।

जहाँ तक पाश्चात्य वैदिक विद्वानों का सम्बन्ध है, वे इन मध्य कालीन भारतीय आचार्यों व भाष्यकारों से एक कदम आगे बढ़ गये। इन लोगों ने भारतीय आचार्यों की तरह वेदों को पवित्र व ईश्वरीय ज्ञान स्वीकार न कर इतना मात्र कहा कि वे मानव पुस्तकालय में प्राचीनतम ग्रन्थ है। इन लोगों ने मध्यकालीन आचार्यों के भाष्यों का अनुवाद किया है। अतः जो दोष उनके भाष्यों में थे वे इनके अनुवाद में भी रहे। एक दुर्भाग्यपूर्ण बात यह रही कि इन पाश्चात्य विद्वानों के मन में विकासवाद में विश्वास के कारण यह भावना घर किए हुए थी कि चूँकि वेदों की रचना मानव जाति के प्रारम्भिक काल में असम्य, जंगली व अशिक्षित लोगों ने की थी इसलिए वेदों में कोई उच्च कोटि का विज्ञान व दार्शनिक विचार नहीं मिल सकते। प्रो० मैक्समूलर जैसे भारी विद्वान् ने एक स्थान पर लिख ही डाला कि "That the veda is full of childish, silly even to our minds monstrous conceptions. who would deny? But even these monstrosities are interesting and instructive."

अर्थात् वेद मूर्खतापूर्ण और राक्षस के समान विकराल वेहूदा विचारों से भरपूर हैं, इससे कौन इन्कार कर सकता है। किन्तु ये भी मनोरञ्जक व शिक्षाप्रद हैं।

ऐसी विषम स्थिति में महर्षि दयानन्द जी का प्रादुर्भाव हुआ था। अपने अगाध पाण्डित्य से उन्होंने सहस्रों वर्षों से जमा होते हुए कूड़े-करकट के नीचे से वेदों को निकाल कर ऊपर रख दिया। उन्होंने इस भ्रान्त धारणा को दूर किया कि वेद धूर्त और निशाचरों की पुस्तक हैं और ये गड़रियों के गीत हैं। इस भ्रान्त धारणा के स्थान पर उन्होंने आर्यसमाज के प्रस्तुत नियम में यह स्थापना की कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। इस सम्बन्ध में कुछ लोग यह शंका करते हैं कि क्या वेदों में सभी प्रकार की विद्याएं उपस्थित हैं। गत पचास वर्षों में विज्ञान ने आश्चर्यजनक उन्नति की है। ऐसे अनेक यन्त्रों का निर्माण किया है जिनकी हमारे पूर्वज कल्पना भी नहीं कर सकते थे। मानव ज्ञान क्रमशः विकास की ओर अग्रसर है। क्या वेद ज्ञान इस नियम का अपवाद है। इसके उत्तर में हम यही कहना चाहते हैं कि ईश्वर का नियम व उसका ज्ञान एकरस, अखण्डित व अपरिवर्तनशील होता है। इसलिए वेद में वर्णित ज्ञान में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हो सकता। वेद के अन्दर जो नाना विज्ञान के सिद्धान्त वर्णन किए हैं, वे गणित विद्या समान ऐसे सत्य हैं कि उनमें कुछ

भी संशोधन व परिवर्तन नहीं हो सकता वेद में सब विचार्य हैं, कहने का आशय यह है कि बीज रूप में सब सत्य विद्या उसमें हैं। अपनी बुद्धि से आगे चलकर मनुष्य उस बीज रूप विद्या का विस्तार करता है।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में महर्षि लिखते हैं कि "वेदों में दो विद्या हैं—एक अपरा, दूसरी परा। इनमें से अपरा यह है कि जिससे पृथिवी और तृण से लेके प्रकृति पर्यन्त पदार्थों के गुणों के ज्ञान से ठीक-ठीक कार्य सिद्ध करना होता है और दूसरी परा कि जिससे सर्वशक्तिमान् ब्रह्म का यथावत् प्राप्ति होती है। यह परा विद्या अपरा विद्या से अत्यन्त उत्तम है, क्योंकि अपरा का ही उत्तम फल परा विद्या है।"

हमारा विश्वास है कि वेद में परमेश्वर ने मनुष्य के लिए उपयोगी सब प्रकार का ज्ञान दे दिया है। वेद में मनुष्य के वैयक्तिक, पारिवारिक व सामाजिक कर्तव्यों का उपदेश है। अपने प्रति अन्यो के प्रति व ईश्वर के प्रति हमारे कर्तव्य कर्मों का वहाँ वर्णन किया गया है। अनेक प्रकार की भौतिक व आध्यात्मिक विद्याओं का वेद में प्रतिपादन किया गया है। कुछ विद्याओं का यहाँ उल्लेख मात्र पर्याप्त होगा। वे हैं—राजनीति, सैन्य एवं युद्ध, शिक्षा विज्ञान, ऋतु विज्ञान, अग्नि विज्ञान, विमान विज्ञान, वृष्टि विज्ञान, गणित विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, यातायात, सिंचाई, उद्योग घन्वे, कृषि विज्ञान, पशु पक्षी पालन, गृह निर्माण इत्यादि। महर्षि ने ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में लिखा है कि "वेदों में अवयव रूप विषय तो अनेक हैं परन्तु उनमें से चार मुख्य हैं (१) एक विशाल अर्थात् सब पदार्थों को यथार्थ जानना (२) दूसरा कर्म, (३) तीसरा उपासना और (४) चौथा ज्ञान है। इसी पुस्तक के पृष्ठ ३६५ पर लिखा है कि वेद में सर्व पूर्ण विद्या हैं उनमें मिथ्या कुछ भी नहीं है। इस तथ्य की जानकारी उस समय होगी जबकि "चारों वेद का भाष्य बन और छपकर सब बुद्धिमानों के ज्ञानगोचर होगा तब सब किसी को उत्तम विद्या पुस्तक वेद का परमेश्वर रचित होना भूगोल भर में विदित हो जायेगा और यह भी प्रगट हो जायेगा कि ईश्वर कृत सत्य पुस्तक वेद ही है वा कोई दूसरा भी हो सकता है।"

प्रस्तुत नियम के दूसरे भाग में महर्षि ने आयों के परम धर्म को बतलाया है और वह है वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना। इस नियम के माध्यम से महर्षि ने मानव मात्र के सामने एक क्रान्तिकारी कार्यक्रम प्रस्तुत किया है। महर्षि के प्रादुर्भाव से पूर्व सभी मनुष्यों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं था। जन्म गत ब्राह्मणों तक ही वेद का पढ़ना पढ़ाना सीमित हो चुका था। क्षत्र और सब वर्णों की स्त्रियों को एक ही श्रेणी में रखकर उन्हें वेद ज्ञान से वंचित कर दिया गया था। ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य में श्री शंकराचार्य ने लिखा है कि "इसलिये भी क्षत्र को

वेद पढ़ने का अधिकार नहीं। क्योंकि स्मृति के द्वारा इनके लिए वेद के सुनने का पढ़ने का निषेध करते हुए स्मृति में कहा है कि यदि शूद्र वेद के शब्द सुन ले तो उसके कान को सीसे और लाख से भर देना चाहिए। शूद्र चलता-फिरता शमशान है इसलिए उसके समीप अध्ययन भी न करना चाहिए। वह बिना सुने कैसे अध्ययन कर सकता है? वेद के उच्चारण करने पर जीभ काट डालने और शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर डालने का विधान है।” श्री शंकराचार्य स्त्रियों का भी वेदाध्ययनाधिकार नहीं मानते थे। श्री रामानुजाचार्य, श्री माध्वाचार्य, श्री बल्लभाचार्य तथा सायणाचार्य का भी यही मत था। सहस्रों वर्षों में महर्षि दयानन्द पहले महापुरुष थे जिन्होंने इस अन्याय के विरोध में अपनी आवाज उठाई। इस विषय में महर्षि के मन्तव्य को सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास से उद्धृत करते हैं—

(प्रश्न) क्या स्त्री और शूद्र भी वेद पढ़ें? जो ये पढ़ेंगे तो हम फिर क्या करेंगे? और इनके पढ़ने में प्रमाण भी नहीं है जैसा यह निषेध है—स्त्रीशूद्रौ नाधीयातामिति श्रुतेः ॥ स्त्री और शूद्र न पढ़ें यह श्रुति है। (उत्तर) सब स्त्री और पुरुष अर्थात् मनुष्य मात्र को पढ़ने का अधिकार है। तुम कुम्भ में पढ़ो और यह श्रुति तुम्हारी कपोल कल्पना से हुई है। किसी प्रामाणिक ग्रन्थ की नहीं। और सब मनुष्यों के वेदादि शास्त्र पढ़ने सुनने के अधिकार का प्रमाण यजुर्वेद के छब्बीसवें अध्याय में दूसरा मन्त्र है—

यथेमां वाचं कल्याणीयावदानि जनेभ्यः । ब्रह्मराज-
न्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ।

परमेश्वर कहता है कि जैसे में (जनेभ्यः) सब मनुष्यों के लिए (इमाम) इस (कल्याणीम्) कल्याण अर्थात् संसार और मुक्ति के सुख देने वाली (वाचम्) ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी का (आवदानि) उपदेश करता हूँ वैसे तुम भी किया करो। आगे चलकर महर्षि लिखते हैं—क्या परमेश्वर शूद्रों का भला करना नहीं चाहता? क्या ईश्वर पक्षपाती है कि वेदों को पढ़ने सुनने का शूद्रों के लिए निषेध और द्विजों के लिए विधि करे? जो परमेश्वर का अभिप्राय शूद्रादि के पढ़ाने सुनाने का न होता तो इनके शरीर में वाक् और श्रोत इन्द्रिय क्यों रचता? जैसे परमात्मा ने पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र सूर्य और अन्नादि पदार्थ सबके लिए बनाये हैं वैसे ही वेद भी सबके लिए प्रकाशित किये हैं। और जहाँ कहीं निषेध किया है उसका यह अभिप्राय है कि जिसको पढ़ने पढ़ाने से कुछ भी न आवे वह निबुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहाता है। उसका पढ़ना पढ़ाना व्यर्थ है। और जो स्त्रियों के पढ़ने का निषेध करते हो वह तुम्हारी मूर्खता, स्वार्थता और निबुद्धिता का प्रभाव है। देखो वेद में कन्याओं के पढ़ने का प्रमाणः—

ब्रह्मचर्य्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ॥ अथर्वं ०

जैसे लड़के ब्रह्मचर्य सेवन से पूर्ण विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त होके युवति विदुषी, अपने अनुकूल प्रिय सद्गुण स्त्रियों के साथ विवाह करते हैं वैसे (कन्या) कुमारी (ब्रह्मचर्य्येण) ब्रह्मचर्य सेवन से वेदादि शास्त्रों को पढ़ पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त युवति हो के पूर्ण युवावस्था में अपने सद्गुण प्रिय विद्वान् (युवातम्) पूर्ण युवावस्था युक्त पुरुष को (विन्दते) प्राप्त होवे। इसलिए स्त्रियों को भी ब्रह्मचर्य और विद्या का ग्रहण अवश्य करना चाहिए।

इस नियम में सभी आर्यों को वेद के पढ़ने पढ़ाने और सुनने सुनाने का आदेश दिया गया है। इससे यह शंका उत्पन्न होती है कि आर्यसमाज केवल ब्राह्मणों का समाज है क्योंकि वेद अध्ययन अध्यापन का कार्य केवल ब्राह्मणों का होता है। क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र का मुख्य कार्य क्रमशः रक्षा करना, धनोपाजन करना व सेवा करना है। यदि ये वर्गस्थ लोग भी वेदाध्ययन में ही रत रहें तो सामाजिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाये। इस शंका के निवारणार्थ यहाँ सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास से उद्धरण प्रस्तुत करते हैं—“क्योंकि जो ब्राह्मण हैं वे ही केवल विद्याभ्यास करें और क्षत्रियादि न करें तो विद्या, धर्म, राज्य और घनादि की वृद्धि कभी नहीं हो सकती। इसलिए ब्राह्मण भी अपना कल्याण चाहें तो क्षत्रियादि को वेदादि सत्य शास्त्र का अभ्यास अधिक प्रयत्न से करावें। इसलिये सब वर्णों के स्त्री पुरुषों में विद्या और धर्म का प्रचार अवश्य होना चाहिये।” स्पष्ट है कि अपने-अपने वर्ण के लिए निर्धारित कर्तव्य कर्मों का पालन करने के लिए वेद का पढ़ना सभी वर्णों के लिए आवश्यक है। विद्या के अभाव में कोई भी व्यक्ति अपने वर्ण के कर्तव्यों का पालन सुचारु रूप से करने में समर्थ न हो सकेगा।

यहाँ दो बातें और विचारणीय हैं। प्रथम यह कि आर्यसमाज के सदस्यों का दोहरा कर्तव्य है। वेद का पढ़ना ही पर्याप्त नहीं है। उसे पढ़कर तदुपरान्त अन्यो को पढ़ाना भी उनका कर्तव्य है। किन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं है। पढ़ने और पढ़ाने के साथ ही वेद को सुनना और सुनाना भी चाहिए। जो व्यक्ति स्वयं पढ़ नहीं सकता वह पढ़ा भी नहीं सकेगा। किन्तु वह दूसरों से वेदोपदेश सुन तो सकता है। और सुने हुए उपदेश को दूसरों को भी सुना सकता है। इस प्रक्रिया का लाभ यह होगा कि वेद ज्ञान का प्रचार बड़ी सुगमता से सभी लोगों में हो सकेगा। पढ़ने पढ़ाने के लिए विद्यालय और सुनने-सुनाने के लिए मन्त्र का होना आवश्यक है। दूसरी बात यह है कि इस नियम में वेद के पढ़ने पढ़ाने और सुनने सुनाने को केवल धर्म ही नहीं वरन् परम धर्म बतलाया गया है। अग्नि का

जन-ज्ञान साप्ताहिक, १४ मार्च, १९७९

—हरभजन लाल

स्वास्थ्य

गुणकारी अमरूद

धर्म ताप या उष्णता है। यदि अग्नि में ताप न रहे तो उसे अग्नि की संज्ञा नहीं दी जा सकती उसे राख कहेंगे। इसी भांति आर्यसमाज के सदस्यों का परम धर्म वेद का पढ़ना पढ़ाना व सुनना सुनाना है। यदि कोई आर्य इस धर्म का पालन नहीं करता तो उसे हम मनुष्य तो कह सकते हैं, उसे प्रोफेसर, वकील, डाक्टर, व्यापारी सभी कुछ कह सकते हैं, परन्तु उसे आर्यसमाजी कदापि नहीं कह सकते। यह भी सत्य है कि वेद का पढ़ना पढ़ाना तभी सम्भव है जबकि हमारे पास वेद पुस्तक उपस्थित हो। इसका अर्थ यह निकला कि प्रत्येक आर्यसमाजी के घर में वेद ग्रन्थों का होना आवश्यक है। यदि ऐसा नहीं है तो वह आर्य समाजी कहलाने का अधिकारी नहीं है।

यह नियम आर्यसमाज का व्यावर्तक गुण है जो इसे अन्य साम्प्रदायिक संगठनों से पृथक् कर देता है। आर्यसमाज की भांति ईश्वर विश्वासी संगठन अनेक हैं। पौराणिक हिन्दु-मुसलमान-ईसाई आदि सभी ईश्वर में विश्वास रखते हैं। नैतिकता के अनेक गुणों में आर्यसमाज की भांति उनका भी विश्वास है। किन्तु वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना सुनाना एक ऐसा धर्म है जो केवल आर्यसमाज के पास है।

वेदाध्ययन के लिए महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास में कतिपय पूर्व दशाओं का निर्धारण किया है जिनकी ओर आर्यसमाज को विशेष ध्यान देना चाहिए। वेद का अध्ययन तभी सम्भव है जबकि उससे पहिले कई वर्ष तक महाभाष्य, मनुस्मृति वाल्मीकि रामायण और महाभारत के अच्छे प्रकरण, षड्दर्शन, दशोपनिषद और चारों ब्राह्मण ग्रन्थों का अध्ययन पूर्ण हो जाये। इस प्रकार इस नियम का अन्तर्निहित क्षेत्र अति व्यापक है।

इस नियम के आधार वेद मन्त्र

१. यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्म राजन्याभ्यां शूद्राय चार्माय च स्वाय चारणाय। यजु० २६।२।

इस मन्त्र का अर्थ ऊपर लिख चुके हैं।

२. ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि विभ्रतः। वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु में ॥ (प्रथ० १।१।१)

भाषार्थ—तृण से लेकर परमेश्वर पर्यन्त जो पदार्थ संसार की स्थिति के कारण हैं, उन सबका तत्त्वज्ञान वेदवाणी के स्वामी सर्वगुरु जगदीश्वर की कृपा से सब मनुष्य वेद द्वारा प्राप्त करें।

भारत में श्रेष्ठ फलों में अमरूद भी अपना स्थान रखता है। मैदानों में सभी जगह अमरूद होता है। फलों का आकार भी कई प्रकार का होता है। किसी अमरूद का गूदा लाल तो किसी का सफेद होता है। मिर्जापुर और इलाहाबाद का अमरूद प्रसिद्ध है। सदियों और गर्मियों दोनों में अमरूद लगते हैं मगर शरद ऋतु का फल मीठा और अच्छा होता है। अमरूद में जल ७६%, कार्बोहाइड्रेट १४.६%, रेशा ६%, लोहा ०.३%, चर्बी ०.२%, विटामिन्स ०.४%, प्रोटीन १.५%, फासफोरस ०.०७%, कैल्शियम ०.०१% होते हैं।

एक अमरूद को रात में पानी में डाल कर रखिये सुबह खाली पेट खाने से मानसिक चिंता का भार कम हो जाता है मस्तिष्क की मांसपेशियों को शक्ति प्रदान होती है। अनावश्यक गर्मी दूर हो जाती है।

जिस आदमी को कब्ज की बीमारी हो मल (पखाने) से बंद आती हो कई-कई दिन तक टट्टी जाने की इच्छा न होती हो, उसको अमरूद खिलाइये। यह शिकावत दूर हो जायेगी और अंतर्द्वियों की गर्मी निकल जाती है।

खांसी की शिकायत हो, कफ हो अमरूद आग में भून कर खाइये।

अमरूद में टेनिन नाम का एक रासायनिक तत्व पाया जाता है यह तत्व फल से अधिक इसकी छाल और पत्तों में पाया जाता है। अमरूद में संकोचन शक्ति होती है ववासीर में बाहर पड़ी हुई ढीली मांसपेशियां अन्दर चली जाती हैं। भीतर की नसें संकुचित होकर पुनः अपने स्थान पर खींच लेती हैं।

इसके छाल और पत्ते भी बड़े उपयोगी हैं ववासीर में अमरूद की छाल पत्ते एक तोला लेकर दस तोला पानी में रात को भिगो दो। सुबह घीमी आग पर इस पानी को उबालिये। दो तोला रहने पर उतार कर मसल छानकर पी लीजिये।

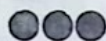
दांत दर्द करता हो, मसूड़ा सूज गया हो, खून आता हो तो अमरूद की छाल को पानी में उबालिये छानकर कुल्ला कीजिये आराम आयेगा और दांतों के अन्य रोगों से भी छुटकारा मिल जायेगा।

घाव भरने और दस्त बंद करने के लिए भी छाल को काम में लाते हैं। परन्तु इस बात का ध्यान रखें यदि कोई स्त्री मासिक धर्म (रजस्वला) प्रसूता (जच्चा) हो या जोड़ों में दर्द हो तो अमरूद इस्तेमाल मत कराइये खाली पेट अमरूद तभी खाइये जब वह रात को भिगोया हुआ हो।

आर्यसमाज की आवश्यकता

तब और अब ?

—श्री युगललाल चतुर्वेदी
(भू० पू० मंत्री राजस्थान)



“आवश्यकता अविष्कार की जननी होती है” यह लोकोक्ति आर्य समाज की स्थापना तथा उसकी अब तक की उपलब्धियों के उपर पूर्ण रूप से चरितार्थ होती है। आर्य समाज का जन्म अथवा उसकी स्थापना अब से एक शताब्दी पूर्व ऐसे समय हुई थी जब हमारा देश धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा आर्थिक दृष्टि से पतन की पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था।

लगभग १००० वर्ष विदेशी तथा विधर्मी शासन काल में प्राचीन वैदिक सनातन धर्म खण्ड-खण्ड होकर अनेक मत मतान्तरों तथा सम्प्रदायों में विभक्त हो गया था। एक निराकार, निर्विकार परमात्मा के स्थान पर कितनी ही देवी देवताओं की कल्पना करके उनकी प्रस्तर-प्रतिमाओं की पूजा प्रारम्भ करदी थी। सृष्टि के आरम्भ से संगठित रहती आई आर्य जाति सैकड़ों उपजातियों में बटकर उसके अन्दर परस्पर में ऊँच नीच और छूत-छात के भौड़े भेद-भाव बढ़ गए थे जिससे वह सशक्त जाति अत्यन्त निर्बल और जर्जरित हो गई थी।

सामाजिक क्षेत्र में बाल विवाह, वृद्ध विवाह तथा अनमेल विवाहों की भरमार होने के कारण अनाथ और विधवाओं की संख्या में इतनी वृद्धि हुई कि उनके आलापन विलाप तथा करुणा क्रन्दन से दशों दिशायें निनादित हो उठी थी। चिरकालीन घोर अशिक्षा अविद्या तथा अज्ञान के कारण जन साधारण ही नहीं तत्कालीन तथा कथित शिक्षित और समझदार समुदाय में भी अन्धविश्वास और छड़िवादिता ने ऐसा घर कर लिया था कि यज्ञादि जैसे धार्मिक अनुष्ठानों के अवसरों पर अथवा देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए पशु-पक्षियों का ही नहीं मनुष्यों तक की बलि देना भी कर्तव्य कर्म मानते थे।

राजनीतिक दृष्टि से उस समय देश अपनी स्वतन्त्रता को खोकर अंग्रेजों के फौलादी पंजों में फँस चुका था और उनके साम्राज्य का सूर्य मर्याद पर पहुँचकर यहाँ के समस्त निवासियों को अस्त और संतप्त कर रहा था।

अंग्रेज लोग इस देश पर शासन ही नहीं करते थे, वे इस का विधिवत शोषण भी कर रहे थे। अपने देश के व्यापार व्यवसाय तथा उद्योगों को उन्नत करने के लिए उन्होंने यहाँ रोजगार धन्वों को क्रूरता पूर्वक नष्ट करना आरम्भ कर दिया था। जिससे इस देश में बेहद बेकारी, बेरोजगारी तथा भीषण भुखमरी फैल गई थी।

अंग्रेजों ने भारतवासियों को राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से ही गुलाम बनाया हो सो बात नहीं, उन्होंने उनके धार्मिक-सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन पर भी गहरा असर डाला था। तत्कालीन कानून मन्त्री लार्ड मैकोले ने यहाँ की सरकारी काम-काज की भाषा के रूप में अंग्रेजी को प्रचलित करके यहाँ के शिक्षित युवक-युवतियों को ईसाई बनाने का भीषण षड्यन्त्र रचाया था और उसमें एक हद तक सफल भी हुआ था। अंग्रेजी शिक्षा प्रसार के साथ साथ पाश्चात्य सम्यता, संस्कृति, वेष-भूषा, रहन-सहन, खान-पान तथा आचार-विचार भी भारतीय जनता पर हावी होते चले गये थे। संक्षेप में देश उस समय दुरवस्था तथा अधोगति के गहरे गर्त में डूब चुका था।

इन भयानक और प्रतिकूल परिस्थितियों में ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना करके उसके द्वारा देश के सर्वतोमुखी उत्थान और उद्धार का अभियान आरम्भ किया था।

तत्कालीन स्थिति के अनुसार आर्य समाज का कार्य इस देश में फैले अनेक मत-मतान्तरों और सम्प्रदायों के जाल को छिन्न-भिन्न करना, जाति-पाँति के नाम प्रचलित ऊँच नीच की भावना को मिटाना तथा बाल-विवाह वृद्ध विवाह तथा अन-मेल विवाह आदि के विरोध में विद्रोह का झण्डा बुलन्द करना था, जो उसने अपनी पूरी शक्ति और सामर्थ्य से किया, जिसके फलस्वरूप आर्य जाति फिर से सजग, सचेत और सावधान होकर सर्वाङ्गीण उन्नति की ओर अग्रसर होने लग गई।

पाश्चात्य शिक्षा, सम्यता तथा संस्कृति के कुप्रभाव को रोकने के लिए आर्य समाज की ओर से गुरुकुल और वैदिक विद्यालय खोले गए। सभी शिक्षा हेतु भी कन्या गुरुकुल और पाठशालाओं की स्थापना की गई। विदेशी शासन की बुराईयाँ बतलाते हुए स्वराज्य एवं स्वदेशीय शासन की स्थापना पर बल दिया गया।

आर्य समाज के उपयुक्त कार्य कलाप गत शताब्दी की तत्कालीन आवश्यकता के अनुरूप थे जिसके परिणाम स्वरूप ही इस देश में धार्मिक भावना, समाज-सुधार, स्वाभिमान, स्वदेशभिमान तथा राष्ट्रीय गौरव की एक ऐसी धारा प्रवाहित हुई जिससे यहाँ की मृतक तुल्य जनता में नवजीवन का संचार हो गया।

वर्तमान काल में देश की अवस्था सर्वथा बदल चुकी

वन-ज्ञान साप्ताहिक, १४ मार्च, १९७९

है। १५ अगस्त सन् ४७ को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाने के अनन्तर यहाँ की राजनीतिक समस्या तो प्रायः पूरी तरह ही सुलभ गई थी, उधर संविधान में जाति-पात और ऊँच नीच का भेद मिटाकर सबको समान सामाजिक अधिकार प्राप्त हो जाने से समाज-सुधार का भी काम बहुत हल्का हो गया। इसी प्रकार आर्थिक क्षेत्र में काफी उन्नति होती जा रही है, शिक्षा प्रचार-प्रसार के परिणाम स्वरूप निरक्षरता का भी निवारण हुआ है। महिलाओं में भी जागृति उत्पन्न हुई है और अब वे राष्ट्र के नव निर्माण में पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने लगी हैं।

यह सब कुछ देशोत्थान के हित में ही हुआ है, जिसके लिए आर्य समाज ने अपनी स्थापना से लेकर निरंतर प्रयत्न किया था। इससे उसकी तत्कालीन आवश्यकता की तो पूर्ति हो गई, परन्तु अब इस देश में कुछ ऐसी दुष्प्रवृत्तियाँ प्रबल होती जा रही हैं। जिनके कुप्रभाव से यहाँ के निवासियों का नैतिक अथवा चारित्रिक ह्रास बड़े वेग से होता जा रहा है और यदि शीघ्र ही उसे नियंत्रित नहीं किया गया तो कोई आश्चर्य नहीं जो देश फिर अपनी पूर्वावस्था पर पहुँच जाए।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् यद्यपि अंग्रेजी साम्राज्य यहाँ से सर्वथा समाप्त हो चुका है, परन्तु अंग्रेजियत का अस्तित्व यहाँ अब भी अक्षण ही बना हुआ नहीं है अपितु उसका प्रभाव निरंतर बढ़ता जा रहा है। जिससे इस देश की प्राचीन सम्यता और संस्कृति खतरे में पड़ जाने की संभावना है, आजकल अंग्रेजी भाषा, अंग्रेजी वेष-भूषा, खान-पान तथा आचार-विचार तो अधिकाधिक जड़ जमाते जाते ही हैं, साथ ही मद्यपान, तथा मांस भक्षण की प्रवृत्ति जो पहले थोड़े ही लोगों तक सीमित थी अब सुरसा के बदन की तरह दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती जा रही है, जिससे प्रायः सभी धर्मों, जातियों और वर्गों के पुरुष ही नहीं महिलायें भी झलूती नहीं बची हैं।

इसी प्रकार आजकल सिनेमा अथवा छवि-गृहों में नग्न तथा अर्द्ध नग्न पुरुष स्त्रियों के यौन सम्बन्ध, तथा चुम्बन आलिंगन आदि का प्रदर्शन करके तथा ऐसे ही भावों के अश्लील गायन सुनाकर समाज के युवा तथा प्रौढ़ वर्ग के लोगों के ही नहीं, कोमल मति बालकों के अन्दर कामुकता और विलासिता की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिया जाता है। इस विनाशकारी प्रवृत्ति पर प्रतिबन्ध लगवाने के लिए यदि आर्य समाज ही पहल नहीं करेगा तो और कौन करेगा।

इतना ही नहीं पिछले कुछ वर्षों से पाश्चात्य देशों की भाँति यहाँ भी स्त्रियों की सौन्दर्य प्रतियोगिता, नग्न-पुरुष स्त्रियों के कंबराडांस, नाइटक्लब, कोल गर्ल, बीय फ्रेंड तथा गर्ल फ्रेंड आदि की कुछ ऐसी कुप्रवृत्तियाँ प्रचलित हुई हैं जिन पर यदि शीघ्र ही अंकुश नहीं लगाया

गया तो भारत की प्राचीन सम्यता और संस्कृति ही नहीं, उसकी सद्यः प्राप्त स्वतन्त्रता भी खतरे में पड़ सकती है।

ठीक एक ऐसा ही और खतरा हमारे देश के आधुनिक तथा कथित योगी, भगवान, गुरु तथा आचार्य आदि संज्ञाओं से सम्बोधित किये जाने वाले उन छद्मवेशी घूर्त लोगों से पैदा हो रहा है जो विदेशी राष्ट्रों की सहायता और सहयोग से यहाँ के शिक्षित युवक तथा युवतियों को अपने जाल में फँसाकर उनको अनाचार और दुराचार ही नहीं, राष्ट्र विरोधी कार्य करने की ओर प्रवृत्त कर रहे हैं। इनकी इस घूर्तता का पर्दाफाश आर्य समाज के अतिरिक्त और कौन सा समुदाय कर सकता है।

अतः कुल मिला कर देश के पुनर्द्धार तथा पुनरोत्थान के लिए आर्य समाज की आज भी उतनी ही आवश्यकता है जितनी पिछली शताब्दी में इसकी स्थापना के समय थी।

क्या आर्य समाज अपने इस गुरुतम कर्त्तव्य और दायित्व की ओर उन्मुख होगा ?

सर्वोत्तम जल श्रम जल

—सन्त ने पूछा—सर्वोत्तम जल कौन-सा है ?

● एक शिष्य ने उत्तर दिया—गंगा जल।

—सन्त ने फिर पूछा—क्या उससे भी बढ़कर कोई जल है ?

● दूसरे शिष्य ने उत्तर दिया—भूमि पर गिरने से पहले का वर्षा जल।

—सन्त ने फिर वही प्रश्न किया ?

● तीसरे शिष्य ने कहा—प्रभात में तरुण पर चमकने वाला ओस-जल।

—सन्त के पुनः प्रश्न करने पर,

● चौथे शिष्य ने कहा—बिछुड़े हुए पुत्र से मिलने पर माता की आँखों से निकलने वाला अश्रु-जल।

—सन्त को इससे भी सन्तोष नहीं हुआ, उन्होंने पाँचवें शिष्य से पूछा।

● उसने उत्तर दिया—आजीवन धोखा-धड़ी करके संचित धन को देखकर मरणासन्न धनी के नेत्रों से निकलने वाला अनुताप-जल।

—अन्त में सन्त ने छठे शिष्य से वही प्रश्न किया ?

● वह बोला—सारा दिन परिश्रम करके अपने आश्रित प्रियजनों के आहार संग्रह करने वाले मजदूर का श्रम-जल (पसीना)।

—सन्त ने इस उत्तर से परम सन्तुष्ट होकर उसे साधुवाद दिया।

—रामकृष्ण भारती

दयानन्द संस्थान के चार वर्ष

दयानन्द संस्थान गत चार वर्षों में अपनी सीमित शक्ति तथा क्षेत्र में जो कुछ कर पाया है, उसे देखकर किसे हर्ष न होगा ? चार वर्षों का समय किसी भी व्यक्ति अथवा संस्था के लिए इतना महत्वपूर्ण तथा उल्लेखनीय नहीं होता। चार वर्ष के एक शिशु को अपने बारे में कितना ज्ञान होता है ? उसे पगपग पर आश्रय तथा लालन-पालन की आवश्यकता होती है। फिर संस्थान के साधन कितने सीमित रहे हैं ? इतने कम समय में संस्थान ने जो कुछ भी प्रगति की है, वह प्रशंसनीय है। उसके प्रकाशन किसी भी अच्छे से अच्छे प्रकाशक के प्रकाशनों से किसी भी प्रकार से कम नहीं हैं ? मूल्य सस्ता तथा ठोस सामग्री।

वेदभाष्य का कार्य ही अपने आपमें एक अत्यंत कठिन साधना है। हमें संस्थान के अधिकारियों विशेष रूप से उसकी प्राण श्रीमती राकेश पंडिता तथा श्री भारतेन्द्रनाथ के प्रति अनुगृहीत होना चाहिए कि उन्होंने इतने कम समय में प्रत्येक आर्य नर-नारी तक महर्षि दयानन्द तथा आर्य विचार-धारा को पहुंचाया है। वेदभाष्य, सत्यार्थ प्रकाश, महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र तथा अन्यान्य ग्रन्थ हजारों और लाखों की संख्या में छापना तथा उसके वितरण आदि की व्यवस्था करना एक व्यक्ति का कार्य नहीं। किसी भी बड़ी से बड़ी संस्था ने इतने कम समय में इतने ग्राहक तथा पाठक नहीं जुटाए हैं, जितने संस्थान ने जुटाए हैं। गीता प्रेस गोरखपुर की बात जाने दीजिए। उसके पीछे वर्षों का परिश्रम, साधना तथा अन्य साधन लगे हैं। अकेले श्री भारतेन्द्रनाथ ने अपने परिवार के सदस्यों को साथ लेकर तथा कुछ सहयोगियों के सहयोग से जो अपूर्व कार्य कर दिखाया है, उसके लिए उन्हें साधु वाद देना ही होगा।

यद्यपि मेरा उनसे परिचय गत सात-आठ वर्षों का ही है, पर मैं उन्हें आर्यसमाज का एक दीवाना मानता हूँ। उनके मन में तड़प है। वे आपसे कुछ मांगते तो नहीं हैं। उनका उद्देश्य ऋषिवाणी तथा वेदों का प्रचार करना है। वह आपके मार्ग को नहीं रोकते। फिर आप ही क्यों उनकी टांगें घसीटते हैं। वे अपने मार्ग पर चल रहे हैं। जो उनका साथ देते हैं, वे सहर्ष उनके साथ रहें, पर जो महानुभाव उनसे सहमत नहीं, वे उन्हें उनके हाल पर छोड़ दें। आप स्वयं कुछ कर न सकें और दूसरों को कार्य भी न करने दें, यह बात कहाँ तक उचित है ? हमें उनसे

स्पर्धा करनी है, ईर्ष्या नहीं। अच्छे कार्य के लिए तो प्रशंसा ही करनी चाहिए।

‘जन-ज्ञान’ तथा ‘दयानन्द-संस्थान’ ने गत कुछ वर्षों में आर्यसमाज के क्षेत्र में जो जन-जागरण की श्रृंखला स्थापित की है, उसके लिए आने वाली पीढ़ी को उनका ऋणी होना चाहिए। भूलें भी उसी से होती हैं, जो काम ही नहीं करता, वह क्या भूल करेगा ? हम सब मनुष्य हैं —अपूर्ण हैं। पूर्णता का दावा कोई भी व्यक्ति अथवा संस्था नहीं कर सकती। यदि कोई अच्छा कार्य कर रहा है, तो उसे शाबास मिलनी चाहिए। आज ‘दयानन्द संस्थान’ तथा उसका मुखपत्र ‘जन-ज्ञान’ जो भी कार्य कर रहा है, उसके पीछे वर्षों की साधना तथा परिश्रम है। योजना बनाने तथा उसे क्रियान्वित करने में समय तो लगता ही है। दयानन्द संस्थान तथा जन-ज्ञान गत कुछ वर्षों में क्या कर सका है, वह एक खुली पुस्तक है और उसे लेख बढ़ करने के लिए समय की आवश्यकता है। हम शीघ्र ही इस सम्बन्ध में विस्तार पूर्वक कुछ लिखने का विचार कर रहे हैं। इसे केवल प्राक्कथन ही समझा जाए।

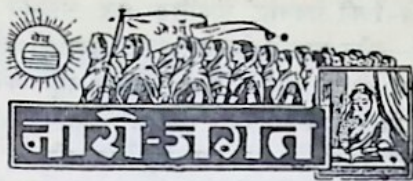
(पृष्ठ १३ का शेष)

न ही वृशस्य शास्त्रस्य ऋग्वेदादिलक्षणस्य सर्वज्ञगुणान्वितस्य सर्वज्ञादन्यतः संभवोऽस्ति ।”

अनेक विद्याओं के स्रोत, सर्वज्ञकल्प महान ऋग्वेदादि शास्त्र का कारण ब्रह्म है, ये शास्त्र प्रदीप के समान समस्त अर्थों का प्रकाश करने वाले हैं। इस प्रकार के सर्वज्ञ गुणों से परिपूर्ण ऋग्वेदादि स्वरूप शास्त्र का सर्वज्ञ परब्रह्म परमात्मा से अतिरिक्त अन्य किसी के द्वारा प्रकट किया जाना संभव नहीं है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपनी रचनाओं में वेद के इस स्वरूप का विस्तार के साथ वर्णन है। ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका तथा सत्यार्थप्रकाश के अनेक विस्तृत प्रसंग इसका विवरण प्रस्तुत करते हैं।

ज्ञान के इस स्वरूप-निरूपण से वेद का अपौरुषेयत्व तथा ईश्वरीय ज्ञान होना प्रत्यक्षवत् स्पष्ट हो जाना है। वह ज्ञान किसी पुरुष की अनुभूति, भावना, स्मृति अथवा कल्पना नहीं है। वह ज्ञान स्वयं प्रकाश, सृष्टि-प्रलय, समाधि-विक्षेप आदि समस्त प्रतीयमान व्यवहारों का प्रकाशक अखण्ड, अजन्मा, अनश्वर एवं स्वतः प्रमाण है। ऐसे परिपूर्ण ज्ञान के प्रतिपादक, अनादि सम्प्रदायाविच्छेद से प्राप्त नियतानुपूर्वीक वेद का अपौरुषेय तथा ईश्वरीय ज्ञान होना सर्व प्रकार सिद्ध है।

जन-ज्ञान साप्ताहिक, १४ मार्च, १९७९



भारत की वैज्ञानिक महिलाएं

भारत में वैज्ञानिक एवम् तकनीकी शिक्षा की कमी नहीं है। इसका योगदान राष्ट्र के विकास हेतु नितान्त अत्यन्त आवश्यक है। देश के बौद्धिक क्षेत्र में हमारी महिला वैज्ञानिक भी कभी पीछे नहीं रही है। विश्व के किसी भी विकासशील देश में विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में उनकी सफलताएँ उल्लेखनीय रही हैं। निःसन्देह भारतीय वैज्ञानिक महिलाएं भी प्रगति के पथ पर अग्रसर हैं।

यह सर्वविदित है कि हमारी छात्राओं में विज्ञान के सम्बन्ध में अत्यधिक रुचि लक्षित होती है। अतः इन आँकड़ों से पता चलता है कि राष्ट्रीय वैज्ञानिक प्रतिभा प्रतियोगिता में ३५० में से १०० फेलोशिप छात्राओं ने प्राप्त किए हैं। यद्यपि विश्वविद्यालयों की परीक्षा में १८ प्रतिशत छात्राएं भी विज्ञान की परीक्षा में सम्मिलित होती हैं। हमारी जिन वैज्ञानिकों ने सफलता अर्जित की है उनकी एक भांकी यहां प्रस्तुत की जा रही है।

प्रो० आशिमा चटर्जी

प्रो० (श्रीमती) आशिमा चटर्जी का नाम हाल ही में दिल्ली में आयोजित भारतीय विज्ञान कांग्रेस एसोसियेशन के ६२ वें सन् की प्रथम महिला अध्यक्ष के रूप में समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ था। इसके पूर्व वे भारतीय विज्ञान एसोसियेशन की सामान्य सचिव कोषाध्यक्ष रहीं। उनका जन्म १९१७ में हुआ था। वे कलकत्ता विश्वविद्यालय में विज्ञान फ़ैकल्टी की डीन रहीं। शैक्षणिक क्षेत्र में उनका स्थान महत्वपूर्ण रहा। वे १९५४ तक लेडी ब्रोंबोर्न कालेज में कलकत्ता के रसायनशास्त्र विभाग की विभागाध्यक्ष भी रहीं। वे केमेट्री की पैरा प्रोफेसर नियुक्त हुई थी।

प्रो० चटर्जी ने १९३७ से सक्रिय रूप में अनुसंधान कार्य में रत रहते हुए भी विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्हें नागार्जुन पुरस्कार व पदक, मऊत स्वर्ण पदक, जोगमाया देवी स्वर्ण पदक, श्री पी० सी० राय गवेषक छात्रवृत्ति प्राप्त हुई थी। १९६१ में उन्हें शान्ति स्वरूप भटनागर पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था। उन्होंने विज्ञान पर कई पुस्तकें भी लिखी हैं।

डा० एस० पद्मावती

डा० (कुमारी) एस० पद्मावती ने हृदय रोग विशेष-

ज्ञ के रूप में पर्याप्त ख्याति अर्जित की है। वे नई दिल्ली में मोलाना आजाद मेडिकल कालेज और गोविन्द वल्लभ पंथ अस्पताल की निदेशक तथा हृदय रोग की परामर्श-दाता हैं।

डा० पद्मावती ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा बर्मा में प्राप्त की तथा अमरीका में हृदय रोग में विशेष योग्यता प्राप्त की। उन्होंने अपने छात्र जीवन में अनेक पुरस्कार तथा पदक प्राप्त किए। वे भारत तथा विदेशों में बहुत सी वैज्ञानिक संस्थाओं की सदस्या हैं। उन्होंने हृदय रोग के संबन्ध में गवेषण की है। इस रोग के सम्बन्ध में भारतीय तथा विदेशी पत्रिकाओं में उनके अनेक लेख भी पत्र पत्रिकाओं में प्रसारित हुए हैं। उन्होंने औषधि और हृदय विज्ञान में काफी योगदान दिया है।

डा० पद्मावती को १९६७ में पद्म भूषण से अलंकृत किया गया था। उन्हें १९६५ में विधान चन्द राय राष्ट्रीय पुरस्कार से भी सुशोभित किया गया। वे लन्दन तथा ऐडिन बर्ग के फिजीशियन कालेज की फैलों हैं तथा अमेरिकन कालेज आफ कर्मडियोलोजी की भी फैलों हैं।

डा० (श्रीमती) जी० आर० घोष

डा० (श्रीमती) जी० आर० घोष क्षेत्र शिक्षा महा-विद्यालय, भुवनेश्वर में विज्ञान विभाग की विभागाध्यक्ष हैं तथा प्रसिद्ध वैज्ञानिक हैं। उन्होंने उड़ीसा की भूमि फंफूद के संबन्ध में गवेषण की है। उनके गवेषण पत्र भारतीय तथा विदेशी पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। श्रीमती घोष उड़ीसा की प्रथम महिला वैज्ञानिक हैं। उन्होंने 1954 में पी. एच. डी की। उन्होंने कई वर्ष तक कटक के रेवर्न कालेज में वनस्पति विभाग में व्याख्या के रूप में भी कार्य किया था।

डा० कमल रणदिवे

डा० (श्रीमती) कमल जे. रणदिवे बम्बई में केन्सर गवेषणा संस्था के जीव विज्ञान विभाग की विभागाध्यक्ष हैं। वे विगत ३० वर्षों से केन्सर गवेषण में रत हैं। उन्होंने कुष्ठ रोग के सम्बन्ध में भी गवेषण की है।

डा० विट्रिज एम. कांगेरा व डा० सु० आयगार का नाम भी आज की भारतीय वैज्ञानिक महिलाओं में उल्लेखनीय है।

अधिक से अधिक

सत्यार्थ प्रकाश

वांटिए

—जगन्नाथ शास्त्री

महर्षि दयानन्द : को
काव्यमय श्रद्धांजलियां

दिल्ली में आर्यसमाज स्थापना शताब्दी समारोह के अवसर पर प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन कर प्रकाशक और संकलनकर्ता ने महर्षि दयानन्द सरस्वती के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है। शताब्दी समारोहों की पूर्व संध्या में 'वन्दना के स्वर' का विमोचन स्वयं प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने कर पुस्तक की उपयोगिता में चार चांद लगा दिए हैं।

'वन्दना के स्वर' राष्ट्र भाषा हिन्दी के नये-पुराने ११६ कवियों द्वारा आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द सरस्वती के प्रति व्यक्त श्रद्धा सुमनों का एक गुलदस्ता है।

आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द के वैचारिक और सुधारवादी आन्दोलनों का देश के विभिन्न क्षेत्रों में व्यापक प्रभाव पड़ा था। कवि, लेखक, वक्ता, नेता सभी ने उस धारा में गीते लगाये और पर्याप्त प्रेरणा प्राप्त की। हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग पर ध्यान से नजर डालें तो प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जायेंगे। द्विवेदी युग के भी नाथूराम शंकर शर्मा, मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिओघ', गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' तथा रामनरेश त्रिपाठी आदि अनेक कवियों की रचनाएं इसकी साक्षी हैं।

संकलनकर्ता श्री सुमन के इस कथन से सभी सहमत होंगे कि भारतीय राष्ट्रीयता का मंग प्रशस्त करने के साथ-साथ इसके सुधारवादी आन्दोलन ने साहित्यिक जागरण की दिशा में भी प्रचुर प्रेरणा प्रदान की। विचार स्वातन्त्र्य तथा तर्क भावना के क्षेत्र में उसने कुछ सर्वथा नवीन आयाम उद्घाटित किए।

प्रस्तुत संकलन में जहाँ द्विवेदी युग के अनेक कवियों की रचनाओं को संकलित कर आर्यसमाज के ऐतिहासिक स्वरूप को स्पष्ट किया गया है वहाँ छायावाद तथा उसके बाद के सभी उत्कृष्ट कवियों की रचनाएं इस बात का ज्वलन्त साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं कि महर्षि दयानन्द सरस्वती के सिद्धान्तों और कार्यकलापों का जो प्रभाव भारत के बुद्धिजीवियों विशेषतः कवियों पर व्यापक रूप से पड़ा उसी का सुपरिणाम देश का तत्कालीन राष्ट्रीय जागरण था।

संकलन में हिन्दी की प्रायः सभी भाव धाराओं के उल्लेखनीय कवियों की रचनाएं समाविष्ट हैं। अकारादि

क्रम से कवियों की रचनाएं संकलित कर संकलन कर्ता कोन पहले—कोन बाद में के आरोप से मुक्त हो गये हैं।

निराला जी की कोई कविता संकलित नहीं की गई लेकिन 'महर्षि दयानन्द और युगान्तर' शीर्षक उनका निबंध प्रस्तुत संकलन में एक अभूतपूर्व उपलब्धि है। एक और निरालाजी ने महर्षि और आर्यसमाज द्वारा देश के सामाजिक जागरण में किये गये योगदान पर प्रकाश डाला है तो दूसरी ओर आर्यसमाज पर धार्मिक संकीर्णता तथा रूढ़िवादिता का आरोप लगाने वालों की मिथ्यावादिता उद्घाटित की है।

निराला जी का यह वाक्य पठनीय है—'देश में महिलाओं, पतितों तथा जाति-पाति के भेदभाव मिटाने के लिए महर्षि दयानन्द तथा आर्यसमाज से बढ़कर इस नवीन विचारों के युग में किसी भी समाज ने कार्य नहीं किया। आज जो जागरण भारत में दीख पड़ता है, उसका प्रायः सम्पूर्ण श्रेय आर्यसमाज को है।'।

काका हाथरसी की उन दो पंक्तियों ने आर्यसमाज के स्वातन्त्र्य संघर्ष की आहुति को कितना व्यक्त किया—

'गोरे, भारत नहीं छोड़ते राजी-राजी।

अगर न ते योग, देश के आर्यसमाजी।'।

'नवीन' की यह श्रद्धा पंक्ति देखिए—

'दयानन्द हो ? हिन्दुपन की या तुम पहली परिपाटी हो।'।

श्री रामनरेश त्रिपाठी कृष्ण को 'शंकर के बाद हिन्दुओं में एक नेता था' कहते हैं तो मैथिलीशरण गुप्त कहते हैं—

हिन्दू-मानस महाराष्ट्र, तू

घरे राष्ट्रभाषा की लाज।

आर्यसमाज।

पुस्तक के अन्त में कवि परिचय भी जोड़ दिया गया है जो बहुत उपयोगी है।

पुस्तक का प्रकाशन, दयानन्द संस्थान द्वारा हुआ है और इसके पुस्तकालय संस्करण का मूल्य है ₹ १५.५० तथा साधारण संस्करण का मूल्य है ₹ ८.५०।

साप्ताहिक जन-ज्ञान

के

नए सदस्यों को

यह ग्रन्थ मुफ्त मिलेगा

जन-ज्ञान साप्ताहिक, १४ मार्च; १९७६

—भारतेन्द्रनाथ

वैदिक-अध्यात्मवाद

सृष्टि की पवित्र भावनाओं के विस्तार और केन्द्रीकरण के लिए एक ऐसे मानसिक स्तर की आवश्यकता होती है जो मानव की विस्तृत शक्तियों को एकत्रित कर सुमार्ग पर चला सके। मानव, आनन्द की खोज में व्याकुल ही न रह, उसे पा सके और उसे पाकर फिर और कुछ भी पाने की चाह ही न रह जाए। जिस मार्ग द्वारा यह सभी कुछ हो सके, उसे कहते हैं 'अध्यात्म-पथ'। निजी अथवा सामूहिक तौर पर, पूर्णता की ओर शांति की, अंतिम परिधि इसी पथ द्वारा प्राप्त होती है।

संसृति के माया जाल भरे स्पन्दनों के मध्य, इस पथ पर चलने वालों के सम्मुख एक आवरण सा छाया रहता है। इसलिए सर्व प्रथम विचारणीय है कि क्या यह आवश्यक है, अथवा केवल कल्पनामय ही। निरंतर उठती हुई वेगवती भावनाओं से पूर्व एक प्रश्न आ आकर मस्तिष्क

जब जीवन के प्रत्येक क्षण और कर्म का आधार स्वार्थ न रह "त्याग" बन जाता है और मनुष्य जीवन के सच्चे लक्ष्य को जान, उस लक्ष्य तक पहुंचने की साधना का निश्चय कर डालता है, तब वैदिक अध्यात्मवाद का पहला पाठ प्रारम्भ होता है।

में गुंजता है, और वह यह कि मानव यदि अन्य प्राणि जगत् से श्रेष्ठ है तो उसका उद्देश्य भी उनसे कुछ उदात्त ही होना चाहिए। सांसारिक पदार्थों का भोग तो सभी प्राणी करते हैं, और यदि मानव भी केवल इन्हीं में लिप्त रहता है तो फिर उसकी विशेषता ही क्या रह जाती है। इसलिए यह निर्विवाद सिद्ध सत्य है कि मानव का लक्ष्य कुछ और ही है जो सभी अन्य प्राणियों से सर्वथा भिन्न है। वह लक्ष्य क्या है इसी को समझ कर हम आगे चलेंगे।

"आत्मा" प्रकाश को चाह में व्यथित हो, लाखों योनियों में कर्मानुसार चक्कर लगाती रही। निरंतर प्रकाश के लिए भटकते रहने पर भी कहीं उसे प्रकाश की एक क्षीण रेखा भी दृष्टि गोचर नहीं हुई। और घोर अंधकार के वारिधि में पड़े-पड़े उसकी अशांति बढ़ती चली। प्रकाश की खोज में, शांति की चाह में, आत्मा ने आकर मनुष्य योनि की शरण ली और याचना की। परमात्मा रूपी प्रकाश तक आत्मा को ले जाने के लिए मनुष्य जीवन ही एक मात्र साधन है। मनुष्य की उत्कृष्टता या उच्चता, केवल इसी कारण है कि वह पथभ्रांत, आकुल, व्यथित, श्रांत आत्मा को साक्षात् परमात्मा के दिव्य धाम तक पहुंचाने का एक मात्र अवलंब है। और वास्तव में यही है एक मात्र ध्येय मानव शरीर का। पर-विश्व के अगाध माया जाल सागर में फंस मनुष्य भूल गया अपने उद्देश्य को, आत्मा की चाह भी उसे याद न रही और सभी कुछ विस्मृत कर वह शरीर की भूख अन्य जीव

धारियों की भांति ही पूरी करने में लग गया। जिन सांसारिक भोगों से ऊबकर आत्मा ने मानव की शरण ली थी उन्हीं सांसारिक लौकिक पदार्थों में मानव, मानवता को अपने लक्ष्य की चरम सीमा को, विस्मृत कर बन गया, अन्य प्राण धारियों के समान ही एक जीव जिसका उद्देश्य शांति और आनन्द की प्राप्ति नहीं अपितु, घन ऐश्वर्य, लालच, विलास, ईर्ष्या, तृष्णा, काम, क्रोध आदि में प्रमादग्रस्त होकर, युद्ध नर संहार और अशांति की ही वृद्धि करना है। सांसारिक पदार्थों ने नहीं, बरन् उनके मोहमय माया जाल ने आत्मा और परमात्मा के मध्य एक दीवार खड़ी कर दी। हमारी आत्मा विलास मयी तृष्णाओं के बीच फंसकर पुनः घोर अंधकार गत में पड़ छटपटाने लगी। उसकी कशकश कराह मनुष्य के कानों तक पहुंच न सकी, यह एक भूल हुई, पाप हुआ और हुआ आत्म हनन। यही यजुर्वेद के ४०वें अध्याय के तीसरे मंत्र द्वारा स्पष्ट प्रकाशित है—

असुर्या नाम ते लोका, अन्वेन तमसाऽऽवृताः। तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति येके चात्महनो जनाः॥

अर्थात् जो मनुष्य आत्मा की चाह को भूल उसे अपने पाप कर्मों द्वारा आवृत करते हैं, वह आत्मा हनन करते हैं, और आत्म हनन करने वाले व्यक्तियों के लिए केवल एक ही विशेषण है "असुर"। और मृत्यु के पश्चात् व जीवन में भी वे अंधकार और कष्ट ही पाते हैं।

पवित्र भावनाओं का आधार खोकर, जीवन की सफल भावना को भूल, कल्पना के सहारे ही सुख की चाह रख, मानव, मानव के उच्च स्थान से पतित हो असुर पद प्राप्त कर चुका। प्रकाश पुंज की ओर बढ़ते-बढ़ते घोर अन्धकार के गत में युग-युग के लिये गिर गया। लंबी मनोहर आशाओं के साथ आई हुई याचक रूप आत्मा को फिर गहन अंधकार में पटक न जाने उसने क्या पाया? सत्य को भूल असत्य की आराधना न जाने किस प्रेरणा से करता रहता है, यह कौन जाने? यह सत्य है कि प्रतिपल-परिवर्तित सृष्टि क्रम में मानव स्वयं शून्य सा है, किंतु आत्मा का अपना एक विशेष स्थान है। संसृति की प्रति-च्छाया में कीर्ति कौमुदी-कलदायिनी के सौरभ का आभास पा उसे विस्तारित करे अथवा पाप पंक दुर्गन्ध में पड़, दुर्गंध कण श्वासों की छाया में जीवन यापन, यह निश्चय स्वयं मानव को ही करना है। वह चाह क्या रखता है, प्रकाश की या अन्धकार की? क्योंकि कर्म करने में मानव (शेष पृष्ठ २८ पर)

मर मर कर जोने वाले विचित्र प्राणी

★★★

प्यारे बच्चों, प्रकृति देवी का यह विशाल साम्राज्य तरह-तरह के विचित्र पशु-पक्षियों से भरा पड़ा है। आज हम तुम्हारी भेंट मर-मर कर फिर जी उठने वाले विचित्र प्राणियों से करवाते हैं।

सबसे पहले हम 'स्टार फिश' (तारों वाली मछली) से तुम्हारी भेंट करवाते हैं। इसका कोई भी अंग टूट जाए लेकिन टूट जाने में तो शायद देर लगे, लगने में देर नहीं लगती। चट से नवीन अंग तैयार हो जाता है, तारे जैसी दिखने वाली इसकी किसी भी भुजा को काट दें, उसी से नई स्टार फिश तैयार हो जाएगी। गोताखोर इन्हें जहाँ पाते हैं, वहीं काट-काट कर फेंक देते हैं, परन्तु वे सब नया शरीर प्राप्त कर लेती हैं।

इसमें एक खूबी और भी है। किसी बिना पचने वाली वस्तु के खा जाने पर यह अपने सारे पेट के अंग निकाल कर फेंक देती हैं और नए प्राप्त कर लेती हैं।

हमारे यहाँ नदी, नालों, तालाबों में कँकड़े रहते हैं। इन कँकड़ा महाशय की तो बस कुछ पूछिए ही मत। इन के टेढ़े-मेढ़े अंगों की कोई गिनती ही नहीं। फिर खूबी यह है कि जरा-सा कोई भी अंग टूटा-फूटा नहीं कि फिर से नया तैयार।

समुद्री मकड़ी, शम्बूक, घोंघा, मन्थर, सलामाण्डर, ट्राइटन तथा गोह नामक जीव भी इसी प्रकार के विलक्षण जीव होते हैं। इनका हाथ, पांव, पूँछ आदि कोई भी अंग टूटते ही फिर नया तैयार हो जाता है।

स्टेण्डर, हांड्रा, प्लेनेरिया, पैरामीशियम, वर्टिसेला आदि जीव भी इसी वर्ग के हैं। प्लेनेरिया के शरीर का ३००वां भाग तक नया शरीर बना देता है। स्टेण्डर का ६०वां भाग भी स्वतंत्र जीव बन जाया करता है। ये सूक्ष्म जीव होते हैं।

केंचुओं या गिड़ोलों के बारे में भी इसी प्रकार की बातें सुनने में आती हैं। परन्तु इन मान्यताओं से सच बात अलग ही होती है। माना तो यह जाता है कि केंचुए को कहीं से भी काट दीजिए, कटे हुए भागों के नए केंचुए बन जाएंगे। परन्तु सच यह है कि इसके दो चार खण्ड अंगले और पाँच-दस पिछले से काटा जाए तो वह फिर से केंचुए बन जाएंगे। बीचों बीच से काट देने पर वे समाप्त हो

जाएंगे। कई बार यह किसी पक्षी के झपट्टे में आ जाता है, टूट जाता है और तड़प-तड़प कर मर भी जाता है।

छिपकली परिवार का 'ग्लास-स्नेक' ऐसा ही प्राणी होता है। इसकी पूँछ जड़ से टूटना जानती है तो समय पाकर जुड़ना भी जानती है।

इसी प्रकार प्रकृति की इस विचित्र दुनिया में कई जीव ऐसे ही हैं जिन्हें देखकर हम कह उठते हैं मर-मर कर जीना इन जीवों का ही काम है। ●

(पृष्ठ २७ का शेष)

स्वतन्त्र है और फल भोगने में बेचारा आत्मा परतंत्र। इसी कारण तो अलक्ष्य कर्मों द्वारा मानव पुनीत आत्मा को फल भोगने के लिए बाध्य कर, असुर पद प्राप्त करता है। क्योंकि आत्मा तो आई थी, प्रकाश पुंज परमात्मा तक पहुँच दिव्यानन्द प्राप्ति के महान् लक्ष्य को ले, और उसे फिर न जाने कितनी लम्बी अवधि तक के लिए पटक दिया गहन अन्धकार में। आप स्वयं विचारिए कि यदि आप अपने किसी उद्देश्य की पूर्णता तक पहुँच जाएँ, और फिर कोई आपको निरपराध उसी स्थान पर पटक दे, जहाँ से आप चले थे तो क्या यह आपका हनन न होगा, आपको बुरा न लगेगा? इसी प्रकार मनुष्य भी आत्मा को दूर पटक, लक्ष्य से आत्मा का हनन करता है और आत्महनन है सृष्टि का सबसे गम्भीर तम अपराध इससे कौन इन्कार कर सकता है।

नीरव स्तब्ध रजनी के प्रथम प्रहर में यः उषा की किरणों के आमन्त्रण के साथ-साथ भी यदि मानव प्रमुदित हो आत्म याचना सम्मुख हृदय समर्पण नहीं कर पाता तो, यह उसकी विजय नहीं वरन् सबसे बड़ी हार ही होती है।

आत्मा का विकास, आनन्द की प्राप्ति अन्धकार से मुक्ति और प्रकाश-सागर में स्नान, निरन्तर स्नान; यह लौकिक लाभ नहीं, जो बुद्धि, धन और बल द्वारा प्राप्त किया जा सके। यह वह दुर्लभ दिव्य आनन्द है जो लौकिक नहीं, अलौकिक है। लौकिक पदार्थों द्वारा यह दूर भले ही चला जाए, समीप एक पग भी नहीं आ सकता। इसको पास लाने के लिए आवश्यकता है अलौकिक भावनाओं की उस उन्माद की चाह, जिसमें केवल प्रकाश की ही चाह हो, जब प्राण भी आगे बढ़ें, तभी पहुँच सकता है, मंजिल तक राही।

मानव सृष्टि के प्रत्येक कार्य को करते हुए भी, उसमें मोह पैदा न हो किन्तु कर्तव्य समझ ही निरन्तर करता हो कार्य और प्रत्येक कारण के मूल में "स्वार्थ" की नारकीय भावना को भूल, "त्याग" की भावना को साथ ले प्रत्येक कार्य का विस्तार करे। यही आर्य संस्कृति के आधार, वैदिक अध्यात्मवाद के पाठ की पहली पंक्ति है। ●

विज्ञान की स्थिति !

(आचार्य क्षितिमोहन सेन का एक संस्मरणात्मक प्रवचन)

गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टेंगोर द्वारा विज्ञान की वास्तविकता को बताने वाली एक लोककथा की मर्मस्पर्शी व्याख्या ।

बहुत प्राचीन काल की कथा है । एक राज्य में हरिणों का एक झुंड रहता था । वहाँ का राजा बड़ा उदार और न्याय निष्ठ था । राज्य की प्रजा धन-धान्य से पूर्ण थी और एक छोर से दूसरे छोर तक दूध की नदियाँ बहती थीं । वन के अन्य जीव-जंतुओं की भाँति हरिण भी उसके राज्य में बड़े सुख से रहते थे । राजा की ओर से सब को अभयदान था । चोरी-चुपके ही कोई शिकार के लिए आ जाता था । हाँ यदि राजा को पता चल जाता, तो वह आज्ञा भंग करने वाले अपराधियों को अदंडित नहीं छोड़ता था ।

लेकिन सुख-सुविधाओं में सुरक्षित हरिण इस आकस्मिक कष्ट को भी उठाने के लिए तैयार न थे । एक दिन हरिणों का नेता राजा के पास गया और बोला—“महाराज ! अब तक हम लोग अपने राज्य में अत्यंत शांति-पूर्वक रहते थे । लेकिन अब यदि ये आकस्मिक आखेट रोके न गये, तो हम लोगों का आपके राज्य में रहना बड़ा कठिन हो जायेगा । प्रहरियों के होते हुए भी आखिर ये शिकारी कैसे आकर हमारा वध कर जाते हैं ?”

राजा ने उत्तर दिया—“भोले वनचरो ! प्रजा के रूप में तुम भी मुझे उतने ही प्रिय हो, जितने कि मनुष्य—तुम भी मेरे पुत्र हो । तुम जानते हो, न तो मैं स्वयं शिकार खेलता हूँ और न दूसरों के द्वारा ही तुम्हें किसी प्रकार से आपदस्थ होने देता हूँ । हमारे राज्य में तो एक दिशा से दूसरी दिशा तक कोई भी तुम्हारा शत्रु नहीं है । किन्तु मैं बाहर से अकस्मात् आ जाने वाले शत्रुओं के सम्बन्ध में भला तुम्हें कैसे आश्वासन दूँ ? इन शत्रुओं से बचाव तो स्वयं तुम्हारे ही हाथों में है । इतने स्वच्छंद और उछल-खल मत बनो । मर्यादा में रहो—सीमा से बाहर भागने की कोशिश न किया करो ।”

हरिणों के नेता ने आक्रोश-पूर्वक कहा—“यदि आप हमें सुरक्षा का आश्वासन दे सकने में असमर्थ हैं, तो हम लोगों को आवास का कहीं अन्यत्र प्रबंध करना पड़ेगा । ऐसी स्थिति में तो, वस्तुतः हमारे लिए श्रेयस्कर यही है कि हम आपका राज्य छोड़कर चले जायें ।

‘जैसी तुम लोगों की इच्छा ।’ राजा ने म्लान भाव

से उत्तर दिया—“यदि हमारे राज्य से बाहर तुम लोगों को अधिक सुरक्षा और सुख-सुविधाएं मिलती हैं, तो तुम लोग अवश्य जाओ । मुझे तो इससे खुशी ही विशेष होगी ।”

राजा का स्पष्ट उत्तर सुन हरिणों का झुंड अपनी अपनी इन्द्र-धनुषी कल्पना के स्वर्णदेश की खोज में निकल पड़ा । बड़ी लम्बी यात्रा के बाद वे एक वन में पहुँचे, वहाँ लिखा था—“यहाँ आखेट खेलना निषिद्ध है ।” हरिणों में उल्लास की हिलोर दौड़ गयी । विजय दर्पस्फीत नेता ने सगर्व कहा—“बंधुओ ! यह है मेरी कल्पना का स्वर्णदेश !” आशा की ऐसी परिपूर्ण पूर्ति अपनी आँखों के सम्मुख होकर समस्त हरिणसमाज मोद-मग्न होकर नाचने लगा ।

दूसरे दिन हरिणों का नेता उस देश के राजा के पास गया और उसे यह अभिलषित आश्वासन मिल गया कि, आखेट न खेलने की सूचना सत्य है और वह राजाज्ञा से लगायी गयी है ।

फिर क्या था ? हरिणों का यह समूह राजाज्ञा से आश्वस्त इस नये वन में बस गया । चारों ओर सुरक्षा का रामराज्य था । हरी भरी भूमि, निर्मल जलाशय—चारों ओर सुख-ही-सुख ! उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम सर्वत्र निर्द्वन्द्व और स्वच्छंद विचरण ! सोने से दिन कटते और चाँदी की रातें ! !

कुछ काल बाद एक दिन अपने सहस्र-सहस्र अनुचरों के साथ उस देश का राजा स्वयं आखेट खेलने उस मृगवन में आया और मन की क्रीड़ा के अभाव को पूर्ण करता हुआ वन के पशु-पक्षियों को मारने लगा । अन्य वन्य पशुओं के साथ उसने बहुत से हरिणों को भी मार डाला । संघ्या तक विनाश का यह तांडव चलता रहा—अपने चारों ओर काल-रात्रि का यह आक्रोश देखकर मृग को लगा, मानो आज उनकी वंश परम्परा का ही अंतिम समय आ गया है ।

विपर्यय और विनाश के इस रक्तरेजित वातावरण में हरिणों का नेता भय विकम्पित हो राजा के सामने गया और नतमस्तक होकर कहने लगा—“महाराज, यह क्या अनर्थ और विश्वासघात है ? आपने स्वयं हम लोगों को आश्वस्त किया था कि ‘मृगवन’ में आखेट न खेलने का आदेश स्वयं आपकी राजमुद्रा से लगाया गया है ।”

राजा ने सस्मित उत्तर दिया—“उस आदेश को जरा ध्यान से पढ़ो, मृग ! उसमें लिखा है कि, मृगवन में आखेट खेलना निषिद्ध है । क्या इसका यह अर्थ है कि उक्त सूचना का बन्धन मेरे लिए भी है ?”

सत्य के इस आकस्मिक अनावरण से आहत मृगों के नेता ने आह भरकर कहा—“ठीक है महाराज ! मेरी

(शेष पृष्ठ ३० पर)

ऐतिहासिक घटना

तुम कौन हो ?

धारा नगरी के संस्कृतज्ञ महाराजा नरेश भोज पढ़े-लिखों में आज भी आदर से पूजे जाते हैं। संस्कृत उनकी राज भाषा थी। प्रजा की बोल चाल की भाषा भी संस्कृत ही थी। उनके मित्र आदि भी संस्कृत के घुरन्धर विद्वान थे एक का नाम था माघ। माघ की काव्य-चातुरी किसको नहीं रिझाती-लुभाती। दोनों मित्र एक बार सैर को निकले। दोनों कवि तो थे ही, ऐसे डूबे साहित्य चर्चा में, कि नगर से दूर जाकर सुध आई, पर अब तो दोनों कवि मित्र मार्ग ही भूल चुके थे। लगे इधर-उधर देखने कि शायद कोई दिखाई दे जाये, ताकि रास्ता तो बता देगा। आखिर उनकी दृष्टि एक बुढ़िया की ओर गई और तुरन्त उसके पास गये। वह अपने खेत की रखवाली कर रही थी। दो व्यक्ति अपने सामने खड़े देखकर वह बोली कुछ भी नहीं। दोनों ने उसे प्रणाम किया। उन्होंने आदर से बुढ़िया से पूछा—मां, यह रास्ता कहां जाता है ?

यह रास्ता कहीं नहीं जाता, यह यही रहता है। केवल राहगीर पथिक इस पर चलते हैं। यह तो बताओ तुम हो कौन ?

मां हम पथिक हैं।

आई, पथिक तो दो ही हैं, एक सूर्य और दूसरा चन्द्रमा, तुम कौन से पथिक हो ? सच-सच बताओ तुम कौन हो ?

मां, हम पाहुन (अतिथि) हैं।

पाहुन तो दो ही हैं—घन और यौवन।

हम तो राजा हैं।

राजा तो दो ही में—एक सुरपति इन्द्र और दूसरे महाकाल। फिर बताओ तुम कैसे राजा हो ?

भोज व माघ दोनों हैरान ! सोचने लगे आज असली गुरुआनी से टक्कर हुई है। मुकाबला सख्त निकला, फिर भी वे हार मानने वाले तो थे नहीं, क्योंकि उन्हें अपनी नैसर्गिक प्रतिभा व अगाध पांडित्य पर अभिमान था। बोले—'हम सामर्थ्यवान् हैं।'।

'वाह जी वाह आप कैसे व कब से सामर्थ्यवान् बने ? सामर्थ्यवान् तो पृथ्वी और स्त्री ये दो ही हैं। मुझे तो तुम में से एक भी यह नहीं दीख रहा। ठीक बताओ तुम कौन हो ?'

मां हम साधु हैं।

इस बार बुढ़िया ने कहा तुम्हारे चेहरे बताते हैं कि तुम साधु नहीं हो। साधु तो दो ही हैं—शील और संतोष।

माघ दिग्गज पण्डित थे, परन्तु परास्त होते जा रहे थे। फिर भी हिम्मत बांधकर बोले—हम तो परदेसी हैं। बुढ़िया मानो हाजिर जवाब वीरबल की मां थी। उसने बात काटकर कहा—तुम थोड़े ही हो परदेसी, परदेसी तो जीव तथा पत्ता यह दो ही हैं। असत्य न कहो सच्च बतलाओ।

भोज और माघ यों समझ रहे थे, मानों बुढ़िया उन पर ज्ञान रूपी अग्नि बाण चला रही है। भोज पसीना-पसीना हो रहे थे। माथे से पुनः पसीना पोंछते हुए बोला—मां हम तो दीन हैं। बुढ़िया के पास जैसे उत्तर तैयार था बोली—दीन तो दो ही होते हैं बकरा और लड़की तुम इनमें से दोनों नहीं। सच बताओ, कौन हो तुम ?

भोज की तो बोलती ही बन्द हो रही थी। माघ ने कहा—मां हम चतुर हैं।

तुम कैसे चतुर हो सकते हो ? चतुर तो अन्न एवं जल हुआ करते हैं।

दोनों मित्र परेशान थे कि इस विदुषी से कैसे छुटकारा पाया जाए। एक राजा था और दूसरा कविराज। पर बेचारों को बुढ़िया ने घेर रक्खा था। कहने लगे—बहुत हो चुका, माता जी अब हम तो हार मान गए हैं। बुढ़िया ने उत्तर दिया—हारे हुए तो दो ही होते हैं ऋण लेने वाला और बेटी का पिता। तुम सच-सच कहो कौन हो ?

भोज व माघ की दशा का वर्णन नहीं किया जा सकता। दोनों मुंह लटका कर रोनी सूरत बनाकर बोले—'मां, हम क्या बताए, हम तो कुछ भी नहीं जानते, सच बात यह है कि तू ही सब कुछ जानने वाली है। बुढ़िया ने अब गम्भीर होकर कहा—'तुम्हें अपनी बुद्धि, विद्वता व वैभव पर प्रमाद व दम्भ हो गया। मैं तो जान गई थी कि आप राजा भोज हैं और आप कवि माघ। जाओ, धारा नगरी का मार्ग यही है। बुढ़िया की विस्मय पूर्ण वाक्-चातुरी सुनकर दोनों को होश आया और वह उसे प्रणाम कर अपने रास्ते पर वापिस हो गए।

आर्य समाज नरेला का ४८वां वार्षिक उत्सव

आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव १३-१४ मार्च को मनाया जा रहा है। इस अवसर पर स्वामी ओ३मानन्द जी, स्वामी रामेश्वरानन्द जी, पं० जगदेवसिंह सिद्धान्ती, प्रो० रामसिंह, चौ० हीरासिंह कार्यकारी पार्षद (दिल्ली) प्रो० शेरसिंह संसद सदस्य, श्री ओमप्रकाश त्यागी (संसद सदस्य), डा० योगानन्द (भगतसिंह कालेज दिल्ली) आदि साधु महात्मा, नेता व उपदेशक पधार रहे हैं।

—अर्जुन प्रसाद

जन-ज्ञान साप्ताहिक, १४ मार्च १९७६

उत्सव समाचार

—आर्यसमाज मुरैना (म० प्र०) का वार्षिकोत्सव ११-१२-१३ अप्रैल १९७६ को धूमधाम से हो रहा है। सभी सादर आमंत्रित हैं।

—आर्यसमाज भारत नगर गाजियाबाद में महर्षि बोधोत्सव धूमधाम से मनाया गया।

—कर्मठ आर्य नेता श्री पं० नरेन्द्र जी १४ मार्च को हैदराबाद में स्वामी सत्यप्रकाश जी से संन्यास ग्रहण कर रहे हैं।

—आर्यसमाज फोर्ट बम्बई में ऋषि बोधोत्सव संसद् सदस्य डा० ए० ए० कैलाश की अध्यक्षता में मनाया गया। भूतपूर्व सेशन जज श्री आर० डी० हंटिंगडी मुख्य अतिथि थे।

सभा में पारसी धर्म गुरु दस्तूर मिनोचर होम जी, मीलाना हमीदुल अन्सारी गाजी, सेंट जेवियर कालेज के फादर जोसेफ, असिस्टेंट कमिश्नर ऑफ पोलिस श्री वाद्यमोर, श्रीमती स्नाति का सुमित्रा अमीन के भाषण और कुमारी उमिला मिश्र के भजन हुए।

इस अवसर पर अखिल भारतीय स्पर्धा में जीते हुए आर्य-वैभव व्यायामशाला के व्यायाम पटुओं का स्वागत किया गया।

—दुर्ग (म.प्र.)। श्री लक्ष्मीनारायण (प्रकाश इंजीनियरिंग वर्क्स) की दो पुत्रियों कु० पुष्पा एवम् कु० शोभा का विवाह संस्कार एक साथ एक ही मण्डप में क्रमशः चि० बुद्धि-सागर (रायपुर) एवम् चि० नेमराज (नागपुर) के साथ आर्यसमाज के पुरोहित पं० ज्ञानप्रकाश शास्त्री 'कच्चाहारी' के पौरोहित्य में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर दयानन्द संस्थान नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित चारों वेद भाष्य भेंट में दिए गए।

आदर्श विवाह

मेरे पुत्र चि० जयदेव अनल का शुभ विवाह दि० १८ फरवरी, १९७६ को दिल्ली, जयपुर मार्ग पर जयपुर, बांदापुर के मध्य स्थित उपनगरी दोसा में एक पौराणिक ब्राह्मण परिवार में पूर्ण वैदिक विधि से श्री पं० ईश्वरी प्रसाद जी 'प्रेम' के कर कमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। जहाँ एक ओर पंडित जी द्वारा वेद मंत्रों की अर्थ सहित बहुत ही सुन्दर ढंग से व्याख्या करना था, वहाँ पौराणिक लोग बड़े प्रेम से इस दृश्य को देख रहे थे। इसका वहाँ की जनता पर बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ा। दोसा में यह अपने ढंग का अकेला और प्रथम विवाह था। दूसरी ओर 'अनल' जो

एक होनहार क्रान्तिकारी युवक है और साप्ताहिक पत्र 'क्रान्ति धर्मी' के सम्पादक हैं, जिसका प्रकाशन जयपुर से होता है। आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द के स्वप्नों को साकार रूप देने के लिए केन्द्रीय सरकार की नौकरी से त्याग पत्र देकर, आर्यजगत् की सेवा के लिए तत्पर हैं। एम० एस० सी० करने के बाद से ही अपने सब कुछ को बाजी पर लगाकर देश सेवा में जुटे हुए हैं।

प्रेरणाप्रद विशेषताएं जो सभी युवकों के लिए अनुकरणीय हैं निम्न प्रकार हैं।

1. अपने विवाह में किसी प्रकार का कोई ठहराव नहीं करना।
2. अपने स्वयम् के कपड़े कन्या पक्ष से न बनवा कर, स्वयम् के पास से बनवाना।
3. लग्न पत्र पर एक रुपया और नारियल ग्रहण करना।
4. गाँव में सभी परंपराओं को तोड़कर, निकासी नहीं निकालना, कोई बाजा आदि नहीं करना।
5. बारात को अगवानी पर भी एक रुपया और नारियल ही ग्रहण करना और यहाँ भी बाजा व घोड़ी का बहिष्कार किया गया।
6. जयमाल के साथ द्वार प्रवेश करना।
7. संस्कार के समय घोती और कुत्ते में बैठना।
8. कन्यादान में किसी प्रकार की रकम या वस्तु नहीं लेना।
9. थड़ा पर जो पूरी रकम ली जाती है, केवल बारात की विदाई के दो रुपये ग्रहण करना।
10. संस्कार के अंत में समाज और देश की सेवा करते रहने का व्रत लेना।

आपका ही

रामकिशोर शर्मा, ग्राम—पी० करनावर

वाया—बसवा, जिला—जयपुर (राज०)

—६-२-७६ को आर्यसमाज पालम गाँव के अत्यन्त सहयोगी सदस्य नवयुवक श्री श्यामलाल गुप्ता जी के परम पूज्य पिता श्री चेताराम जी का अचानक स्वर्गवास हो गया। २२-२-७६ को आर्यसमाज पालम गाँव की ओर से शोक प्रस्ताव किया गया। जिसमें २ मिनट के मौन द्वारा ईश्वर से प्रार्थना की गई कि गुप्ताजी के पिताजी को सद्गति और आंत शोक सन्तप्त परिवार को शान्ति प्राप्त हो।

निर्वाचन

—आर्यसमाज मुरैना। प्रधान-श्री लालताप्रसाद आर्य, मंत्री-श्री दर्शनलाल आर्य। कोषाध्यक्ष-श्री सत्य नारायण आर्य। पुस्तकाध्यक्ष-श्री मनमोहन आर्य।

मुद्रक-प्रकाशक-सम्पादक पंडिता राकेश रानी द्वारा सैनी प्रिन्टर्स दिल्ली में छपा

जन-ज्ञान [साप्ताहिक]

वेद मन्दिर, १५६७ हरध्यानसिंह मार्ग
नई दिल्ली-११०००५। दूरभाष : ५६६६३६

रविवार

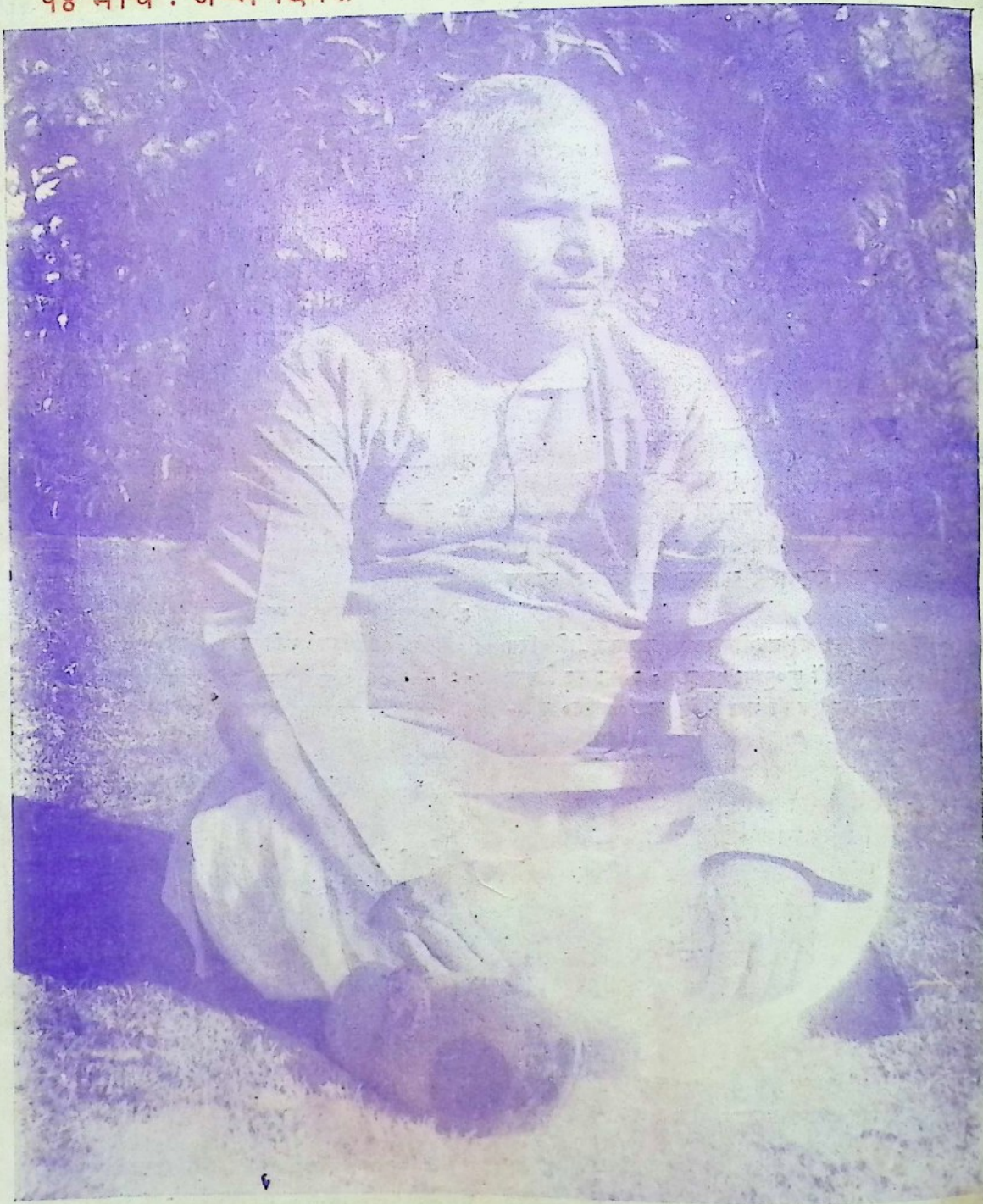
१४ मार्च

१९७६

रजिस्टर्ड नं०

D-(C) 619

१४ मार्च : जन्म दिवस



दयानन्द संस्थान के अध्यक्ष :

पं० भारतेन्दुनाथ